जैनधर्म की कहानियाँ

भाग 17

प्रकाशक :

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन–सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का 24 वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग - 17)

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – 491 881 (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – 364250 (सौराष्ट्र)

प्रथम आवृत्ति - 3100 प्रतियाँ
11 अप्रेल, 2006
(महावीर जयन्ती महोत्सव)

न्यौछावर – सात रुपये मात्र

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति स्थान –

- **अ. भा. जैन युवा फैडरेशन**
  शाखा-खैरागढ़
  श्री खेमराज प्रेमचंद जैन,
  'कहान-निकेतन' खैरागढ़-491881
  जिला-राजनाँदगाँव
  (छत्तीसगढ़)
- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
  ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015
  (राजस्थान)
- **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
  'कहान रश्मि', सोनगढ़-364250
  जिला-भावनगर (सौराष्ट्र)

टाईप : जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर
मो. : 094147-17816
फैक्स : 0141-519265
मुद्रण : श्रुतज्ञान प्रिन्टर्स, जयपुर
मो. : 098297-76754

卐 साहित्य प्रकाशन फण्ड 卐

501/- रु. देने वाले –
श्रीमती पुष्पाबेन भोपाल जैन, दिल्ली
दमयन्ती बेन हरिलाल शाह ह. मधुभाई मुम्बई
सविताबेन रसिकभाई, सोनगढ़
हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, मुम्बई
डॉ. वासन्तीबेन छाबड़ा, मुम्बई
श्री रमेशभाई अखेराज बुरिचा, मुम्बई

251/- रु. देने वाले –
झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरि. ट्रस्ट, खैरागढ़
मनन-चिन्तन डगली घाटकोपर
स्मिताबेन किरणभाई भेंडिया, अमेरिका
स्व. वसंतबेन ह. मनहरलाल कोठारी, मुम्बई
जयश्री बेन इन्द्रजीतभाई कोठारी, मुम्बई
श्री अभयभाई कोठारी, मुम्बई
अबनी तथा हीरलबेन, मुम्बई

201/- रु. देने वाले –
श्री खेमराज प्रेमचन्द जैन, ह. -श्री अभय, खैरागढ़
श्री दुलीचन्द कमलेश जैन ह. जिनेश, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई, ह. श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार जैन, जयपुर
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
सविता बेन मनुभाई, सोनगढ़
प्रकाशदेवी सेठी, गोहाटी
श्री निलेश शामजी शाह, गोरेगाँव
श्री विपुल शामजी शाह, गोरेगाँव
श्रद्धा पूजा सतीश शाह, मलाड
श्री ऋषभ-रुचि-चन्द्रकान्त कामदार, राजकोट
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़

101/- रु. देने वाले –
श्री पन्नालाल मनोजकुमार गिड़िया, खैरागढ़
श्री पन्नालाल उमेशकुमार छाजेड़, खैरागढ़
ब्र. कान्ताबेन एवं मास्टर कान्ताबेन, सोनगढ़
काकिलाबेन बाबूभाई जैन, बडोदरा
प्रीति बेन जयन्ती लाल पालड़ी

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत जैनधर्म की कहानियाँ भाग १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२,१३,१४,१५,१६,१७ एवं अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह), चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़दोहा-भव्यामृत शतक, आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार २४ पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग-१७ के रूप में १० पौराणिक कहानियों को संगृहीत किया गया है, जिनका सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम इनके आभारी हैं।

आशा है पाठकगण इन बोधप्रद कहानियों को पढ़कर अवश्य ही बोध प्राप्त करेंगे। तथा सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल बनाएँगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। – ऐसी हमारी भावी योजना है। इस सन्दर्भ में आपके बहुमूल्य सहयोग व सुझाव अपेक्षित हैं।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन	प्रेमचन्द जैन
अध्यक्ष	**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विपत्ति में भी सम्पत्ति

(**"क्रोध के उदय से यह जीव दूसरों का बुरा करना चाहे, परन्तु बुरा होना उसके भवितव्य के आधीन है।"** – इस अभिप्राय को सिद्ध करनेवाली पुराण-पुरुष श्री प्रद्युम्नकुमार की कथा प्रस्तुत है –)

एक दिन रात्रि के समय रुक्मणी पलंग पर सो रही थी। उसने स्वप्न में अपने को हंस-विमान पर चढ़कर आकाश में गमन करते देखा। फिर जागृत होने पर अति प्रसन्न हुई। प्रातःकाल अपने पति श्रीकृष्ण से स्वप्न का फल पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा कि हे रानी ! तुझे पुत्ररत्न प्राप्त होगा, जो भविष्य में महापुरुष होगा। पति के ये वचन सुनकर रुक्मणी हर्षित हुई और तत्पश्चात् नव माह पूर्ण होने पर रुक्मणी के सर्व लक्षणों से युक्त पुत्र का जन्म हुआ। उसी समय एक महाबलवान, असुर धूमकेतु (अग्नि के गोले समान) वहाँ से निकला और रुक्मणी के महल के ऊपर आकर रुक गया। उसने अपने कुअवधिज्ञान से रुक्मणी के पुत्र को अपना शत्रु जाना, और क्रोधपूर्वक विमान से नीचे उतरकर उसने गुप्तरूप धारण करके रुक्मणी के प्रसूतिगृह में प्रवेश किया।

यद्यपि रुक्मणी के महल में कड़ी सुरक्षा व्यवस्था थी, कोई भी वहाँ आसानी से नहीं पहुँच सकता था। तथापि विद्याबल से रुक्मणी को निद्राधीन करके उसने बालक को अपने हाथ में उठा लिया और आकाश में ले गया। आकाश में जाकर उसने विचार किया कि पूर्वभव में मेरी स्त्री का हरण करनेवाला ये मेरा शत्रु है – इस कारण इसको हाथ से मसलकर मार दूँ या नख से चीरकर आकाश के पक्षियों को खिला दूँ अथवा समुद्र में डालकर मगरमच्छों को खिला दूँ। फिर वह पुनः विचार करता है कि अरे ! यह तो तत्काल का जन्मा है, इसे मारने की क्या जरूरत है, यह तो बिना मारे स्वयं स्वतः ही मर जायेगा। – ऐसा विचारकर वह धूमकेतू असुर आकाश से नीचे

उतरा और एक गहन अटवी में एक भारी शिला के नीचे बालक को दबाकर अदृश्य हो गया।

उस समय मेघकूट नामक नगर का अधिपति कालसंवर नाम का विद्याधर अपनी कनकमाला नाम की रानी सहित विमान में बैठकर जा रहा था, बालक के पुण्योदय से वहाँ उसका विमान वहाँ रुक गया। तब उसने विचार किया कि "मेरा विमान यहाँ किस कारण रुका है?" यह जानने के लिए शीघ्र ही वह पृथ्वी पर उतरा, उसने बालक की श्वांस से शिला को हिलते देखा, तब उसने विद्या के बल से शिला को हटाया, तब उसके नीचे दबे उस बलशाली बालक को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि जिसके अंग अखण्डित हैं और प्रभाव साक्षात् कामदेव के समान है। इस कारण उस दयालु विद्याधर ने बालक को लेकर अपनी रानी कनकमाला को देकर कहा कि तेरे पुत्र नहीं है, तो यह ले। तब कनकमाला ने बालक को छाती से लगाया और राजा-रानी दोनों ने पुत्र सहित मेघकूट नगर की ओर प्रस्थान किया। बालक अभी एक दिन का ही था। अतः राजा ने नगर में यह घोषणा करवा दी कि रानी के गूढ़ गर्भ था और मार्ग में बालक का जन्म हुआ। विद्याधर ने भी खूब नृत्य गान करके बालक का आनन्दोत्सव पूर्वक प्रद्युम्न नाम रखा। प्रद्युम्न बाल-सुलभ क्रीड़ाओं को करता हुआ दोज के चन्द्रमा की भाँति वृद्धिंगत होने लगा।

इधर रुक्मणी जागृत हुई तो उसने पुत्र को अपने पास नहीं देखा, तब एक चतुर बृद्ध बाई से कहा कि "खोज करो, पुत्र कहाँ गया है ?" खोजने पर भी जब कहीं पुत्र नहीं मिला तो माता विलाप करने लगी कि "हाय पुत्र ! किसी शत्रु ने तेरा हरण किया है।" क्या मैंने पूर्वभव में किसी के पुत्र का हरण किया था ? जिसका यह फल है। इसप्रकार रुक्मणी के विलाप करने से सभी लोग विलाप करने लगे।

जब यह समाचार श्रीकृष्ण और बलदेव को ज्ञात हुए, तो वे रुक्मणी के महल में आये। रुक्मणी आदि रनवास के सर्व लोगों का रुदन सुनकर तीन खण्ड के स्वामी नारायण अपने भुजबल और असावधानी कि निन्दा

करने लगे कि "जगत में दो ही पदार्थ हैं। एक दैव और दूसरा पुरुषार्थ। उनमें से जगत में तो दैव ही बलवान है; क्योंकि वह स्वयं उपार्जित किया हुआ है। और पुरुषार्थ तो पर में चलता नहीं है, अत: जो पुरुषार्थ का गर्व करता है उसको धिक्कार है। यदि पुरुषार्थ ही बलवान होता तो नग्गी तलवार सहित मेरे और बलदेव के होते हुए मेरे पुत्र को शत्रु कैसे ले जा सकता था ? "इत्यादि विचार करके फिर श्रीकृष्ण रुक्मणी से कहते हैं कि हे प्रिये ! तू शोक न कर, धैर्य धारण कर। वह पुत्र स्वर्ग लोक से आया है, पुण्य का अधिकारी है, अत: अल्पायु वाला नहीं हो सकता। मेरे समान पिता और तुम्हारे समान माता का पुत्र हीनपुण्य और अल्पायु वाला नहीं हो सकता। यह कोई ऐसा ही भविष्य होगा। ऐसे अनेक जीव अपहृत होकर वापस आते हैं। तेरा पुत्र लोगों के नेत्रों के उत्सव का कर्त्ता है, उसे मैं कहीं से भी खोजकर लाऊँगा।

इसप्रकार रुक्मणी को धैर्य बंधाकर श्रीकृष्ण पुत्र की खोज के उपाय पर विचार कर ही रहे थे कि उसी समय नारदजी आते हैं और रुक्मणी के पुत्र के गुम हो जाने के समाचार सुनकर उनके प्रति सांत्वना व्यक्त करते हुए रुक्मणी से कहते हैं कि पुत्री तू शोक मत कर, मैं शीघ्र तेरे पुत्र के सब समाचार लेकर आता हूँ। अभी इस क्षेत्र में अतिमुक्त नामक मुनि अवधिज्ञानी थे, सो वे तो केवलज्ञान प्राप्तकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। और तीन ज्ञान के धनी भावी तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ अभी गृहस्थ दशा में हैं; परन्तु वे अपने अवधिज्ञान का उपयोग नहीं करते। इसलिए मैं विदेहक्षेत्र जाकर श्री तीर्थंकर भगवान सीमन्धर स्वामी से पूछकर शीघ्र तुम्हारे पुत्र के समाचार लाता हूँ।

इसप्रकार रुक्मणी को सन्तोष उत्पन्न कराकर नारद श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में जाकर भगवान को नमस्कार करके बैठ गये। तब वहाँ के पद्मरथ चक्रवर्ती ने पूछा कि हे भगवन् ! यह पुरुषाकार जीव किस जाति का है ?

भगवान की ॐध्वनि में आया कि यह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का नौंवा नारद है। वासुदेव कृष्ण का मित्र है। चक्रवर्ती ने पुन: पूछा कि प्रभो ! नारद यहाँ किसलिये आये हैं ? तब भगवान भी निरक्षरी दिव्यध्वनि द्वारा चक्रवर्ती

को समाधान हुआ कि कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को पूर्वभव का बैरी हरण करके ले गया है। वह सौलहवे वर्ष में सोलह लाभ प्राप्त करके माता-पिता को मिलेगा। रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि महाविद्याओं का धारक होगा, वह देवों द्वारा अपराजित, प्रबल पराक्रमी, तद्भव मोक्षगामी है।

प्रद्युम्न पूर्वभव के पुण्य से कष्ट में जाकर भी सुरक्षित है। सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में प्रद्युम्न का यह वृतान्त सुनकर नारद हर्षित हुए और तुरन्त आकाश मार्ग से गमन करके मेघकूट नगर गये। कालसंवर विद्याधर राजा ने नारद का बहुत विनय किया। नारद ने पुत्र को देखा। 'सैकड़ों कुमार जिसकी सेवा करते हैं' – ऐसे उस प्रद्युम्न कुमार को देखकर नारद प्रसन्नता से रोमांचित हो गए; परन्तु अपने मन का भेद किसी को नहीं बताया। राजा-रानी और कुँवर ने प्रणाम किया, नारद उन सभी को आशीष देकर आकाश मार्ग से शीघ्र द्वारिका पहुँचे और वहाँ आकर प्रद्युम्न की जो पूर्वभव और वर्तमान भव की कथा जिनेन्द्रदेव के श्रीमुख से सुनी थी, वह सब बताई। (जिसका सार आगामी कहानी में आप भी पढ़ेंगे।) सभी को यह भी बताया कि मैं स्वयं मेघकूट नगर में प्रद्युम्न को देखकर आ रहा हूँ।

वहाँ से नारद, रुक्मणी के महल में गये और कहा कि हे रुक्मणी! तेरा पुत्र मेघकूट नगर में राजा कालसंवर के यहाँ अनेक राजकुमारों के साथ क्रीड़ा करते मैंने देखा है। वह तो साक्षात् देवकुमार ही है, ऐसा रूपवान अन्य नहीं है। तेरा पुत्र सोलहवे वर्ष में सौलह लाभ सहित प्रज्ञप्ति विद्या को लेकर आनन्द पूर्वक यहाँ आयेगा। जिस दिन वह आयेगा उसी दिन तेरे मंदिर के उपवन में सूखी हुई मणी बावड़ी जल से भर जायेगी और उसमें कमल खिलेंगे, और भी अनेक चमत्कार होंगे, उन्हें देखकर तुम अपने पुत्र का आगमन जानना।

हे पुत्री ! तू सीमन्धर स्वामी के इन सत्य वचनों को जानकर शोक रहित हो धैर्य और शान्ति रख। – इसप्रकार नारद के मुख से पुत्र की कथा सुनकर, भगवान की वाणी पर श्रद्धा करके रुक्मणी नारद से कहती है कि हे भाई ! ऐसा कार्य तुम्हारे से ही बने, अन्य से नहीं बने। मैं पुत्र के शोक में जलती

थी, मेरा कोई आलम्बन नहीं था। तुमने हस्तावलम्बन देकर मुझे स्थिर किया। जो सीमन्धर भगवान ने कहा वह सत्य ही है। मुझे अवश्य पुत्र के दर्शन होंगे। मैं जिनेन्द्र के वचन से जीवित हूँ। इस प्रकार उसने नारद को मधुर वचन कहे, तब नारद आशीष देकर विदा हुए।

इधर प्रद्युम्नकुमार कालसंवर के यहाँ कनकमाला माता की गोद में जो उसी की पूर्वभव में पत्नि चन्द्राभा थी, बड़ा होकर अपने पुण्य के प्रभाव से आश्चर्यकारी साहस द्वारा देवों को हराकर सोलह दैवी विद्यायें प्राप्त करता है और सोलह वर्ष के सुन्दर नव यौवन में प्रवेश करने पर पूर्व संस्कार वश माता कनकमाला को पुत्र के प्रति कामवासना जागृत होती है। इस प्रसंग से कनकमाला के साथ विरोध होने पर पिता कालसंवर के साथ प्रद्युम्न का युद्ध होता है, वह पिता को हराता है। उसी समय वहाँ नारद आ जाते हैं और प्रद्युम्न से कहते हैं कि "तू कृष्ण-रुक्मणी का पुत्र है, कनकमाला और कालसंवर तेरे माता-पिता नहीं हैं। तेरा हरण होने से तू यहाँ बड़ा हुआ है – इत्यादि सारा वृतान्त उसे बताते हैं।" इससे वह माता-पिता के पास द्वारिका जाने हेतु तत्पर होता है। वह विद्याधर माता-पिता से क्षमा याचना करके द्वारिका जाने की आज्ञा लेता है। फिर विद्या द्वारा अनेक आश्चर्य करके द्वारिका के लोगों को मुग्ध करता हुआ माता रुक्मणी आदि से मिलता है तथा विद्या द्वारा बाल क्रीड़ा आदि करके माता को प्रसन्न करता है।

एक दिन वैराग्य का निमित्त पाकर राज्यादि समस्त बहिरंग और अन्तरंग परिग्रह त्याग कर प्रद्युम्नकुमार जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके उग्र पुरुषार्थ द्वारा क्षपकश्रेणी मांडकर केवलज्ञान लक्ष्मी का वरण करते हैं। और आयु पूर्ण होने पर अनन्त अव्याबाध सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

– इन सबका आश्यर्चकारी विस्तृत वर्णन प्रद्युम्न चरित्र, पाण्डव पुराण, हरिवंशपुराण आदि से जानना चाहिये। 卐

बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख होना – यही सम्पूर्ण सिद्धान्त का सार है। – **पूज्य स्वामीजी**

प्रद्युम्नकुमार-शम्भूकुमार के पूर्वभव

तद्भव मोक्षगामी चरमशरीरी श्री प्रद्युम्नकुमार का जन्म होते ही उसके पूर्वभव के बैरी द्वारा उसका हरण हो जाने पर जब नारद श्री सीमंधर तीर्थंकर भगवान के समवसरण में यह शंका लेकर जाते हैं कि श्री प्रद्युम्नकुमार का हरण किसने किया ? क्यों किया ? और उसने अपने पूर्वभव में ऐसा कौन-सा जघन्य पाप किया था, जो तद्भव मोक्षगामी होते हुए भी उसका इसभव में जन्म होते ही हरण हो गया ?

इस शंका के समाधान स्वरूप तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि में श्री प्रद्युम्नकुमार-शम्भूकुमार के पूर्वभवों का जो वर्णन आया, उसका संक्षिप्त वृतान्त इसप्रकार है –

इस जम्बूद्वीप के मगध देश में, शालीग्राम नगर के सोमदत्त ब्राह्मण और उसकी पत्नी अग्निला के अग्निभूति एवं वायुभूति नाम के दो पुत्र थे, वे दोनों भाई वेद-विद्या में प्रवीण थे, उन्होंने अपनी विद्या के बल से अन्य ब्राह्मणों के प्रभाव को फीका कर दिया था। विद्या अभ्यास द्वारा उन्हें मद हो गया था। वे माता-पिता के प्रेम के कारण बहुत वाचाल और भोगों में आसक्त थे, वे ऐसा मानते थे कि सोलह वर्ष की नारी का सेवन ही स्वर्ग है। वे परलोक की सत्ता ही नहीं मानते थे, अत: उनको परलोक सुधारने की बात ही नहीं रुचती थी।

एक दिन उनके नगर-उद्यान में विशाल संघ सहित नंदिवर्द्धन नामक मुनिराज पधारे। वे श्रुतरूपी सागर के पारगामी थे। नगर के चारों वर्णों के मनुष्य उनकी वन्दना के लिए जाते देख उन ब्राह्मण-पुत्रों ने उनसे पूछा कि आज सभी लोग कहाँ जा रहे हैं ? तब एक सज्जन ब्राह्मण ने कहा कि मुनियों का संघ आया है, इसलिये सभी उनकी वन्दना के लिये जा रहे हैं। तब ब्राह्मण पुत्रों ने विचार किया कि हमसे अधिक बुद्धिमान कौन हो सकता है ? हम

भी मुनियों का महात्म्य देखें – ऐसा विचारकर वे दोनों भाई भी अभिमान सहित मुनियों के समीप पहुँच गये।

तब एक सात्विक नामक मुनि गुरु से अन्यत्र विराजमान थे। उन दोनों ब्राह्मण पुत्रों को देखकर उन मुनिराज ने विचार किया कि ये दोनों अभिमानी और क्रोधी हैं। इस कारण गुरु के पास जाकर कदाचित् विवाद करेंगे, सभा में क्षोभ उत्पन्न करेंगे। श्रीगुरु की सभा सागर के समान गम्भीर है और श्रीगुरु धर्म का उपदेश करते हैं। इसलिये इन दोनों को वहाँ नहीं जाना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके जिनके अवधिज्ञानरूपी नेत्र हैं – ऐसे सात्विक नामक मुनि ब्राह्मण-पुत्रों से कहने लगे कि ब्राह्मण युगल यहाँ आओ। तब दोनों भाई सात्विक मुनि के पास जाकर बैठ गये। उन्हें वाद-विवाद के गर्व सहित देखकर मुनि के पास अन्य अनेक लोग आकर एकत्रित हो गये। मुनि ने विप्रों से पूछा कि तुम कहाँ से आये हो ? तब वे दोनों बोले कि हम इसी गाँव से आये हैं।

तब मुनि ने कहा कि यह तो मैं भी जानता हूँ कि तुम शालीग्राम के वासी हो, परन्तु हम तो यह पूछते हैं कि इस संसार में भ्रमण करते हुए तुम किस गति से आये हो ? तब विप्र-पुत्र बोले – 'पुनर्जन्म होता' – हम यह नहीं मानते; क्योंकि पुनर्जन्म के भय से वर्तमान में प्राप्त सुखों को छोड़ना कहाँ की बुद्धिमानी है ? ये सब बातें तो जगत के भोले-भाले प्राणियों को डराने के लिए आप जैसे धर्मधारी कहते हैं – इसमें सत्यता तो किंचित् भी भासित नहीं होती। 'हमारा पुनर्जन्म हुआ है' – इसका आपके पास क्या प्रमाण है ? क्या आप यह सिद्ध कर सकते हैं ?

तब मुनिराज सात्विक ने कहा – 'तुम कहाँ से आये हो ? यह मैं जानता हूँ, और मैं उसे सिद्ध भी कर सकता हूँ।'

फिर विलम्ब किस बात का। सिद्ध कर दो न !

तब मुनिराज सात्विक ने कहा – तुम दोनों पूर्वभव में इसी गांव के समीप शियाल थे। तुम दोनों को पूर्वभव में भी परस्पर प्रीति थी। एक बार

गाँव में सात दिन तक भीषण वर्षा हुई, उल्कापात हुआ, तब सभी कृषक अपने-अपने घरों से बाहर नहीं निकल पाये। खेतों में काम भी नहीं कर पाये। उसी समय एक प्रवर नामक किसान की काथी (कृषि कार्य में काम आने वाला एक उपकरण विशेष) खेत में पड़ा रहने से भीग कर गल गया। तुम दोनों भी भीषण वर्षा के कारण सात दिन से भूखे थे। भूख की वेदना के कारण तुम दोनों शियालों ने वह काथी खा ली, जिससे तुम्हारे पेट में वायुशूल हो गया। इससे असहनीय वेदना सहित तुम दोनों (शियाल) अकाम निर्जरा पूर्वक मरकर पूर्वकर्म बंधवशात् इसी गाँव में सोमदेव और अग्निला नामक दम्पत्ति के यहाँ अग्निभूति और वायुभूति नामक पुत्र हुए हो। तुम कुल के गर्व से गर्वित हो। यह कुलमद झूठा है। **जीव को पाप के उदय से दुर्गति और पुण्य के उदय से सुगति होती है। इस कारण कुल-जाति का गर्व करना व्यर्थ है।**

बरसात रुकने के बाद वह प्रवर नाम का किसान खेत में गया। उसने शियालों को मरा हुआ देखकर उनके चमड़े से चरस बनाया, जो आज भी उसके घर में है । तथा वह किसान मरकर अपने पुत्र का पुंत्र हुआ है और उसको जातिस्मरण भी हुआ है; इस कारण वह अपने को पुत्र का पुत्र हुआ जानकर गूंगा होकर रहता है और अभी यहीं बैठा है। वह मेरी तरफ देख रहा है, इतना कहकर मुनिराज ने उसको बुलाया और कहा कि तू प्रवर नाम का किसान है न ? पुत्र का पुत्र होने के शोक को तजकर अब गूंगापन छोड़ और अमृतरूप वचन बोल!

इस संसार में जीव नट की तरह नृत्य करता है। स्वामी से सेवक और सेवक से स्वामी हो जाता है। पिता हो वह पुत्र और पुत्र हो वह पिता हो जाता है, माता हो वह स्त्री और स्त्री हो वह माता हो जाती है – ऐसा ही संसार का स्वरूप विपर्यय है। जैसे रहँट का घड़ा ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर होता है, उसी प्रकार इस संसार में होता है। जीव अनादिकाल से इसी प्रकार भ्रमण करता है, इसलिये हे भव्य ! सार वस्तु का संग्रह करके जिसका मूल दया है – ऐसे पंच महाव्रत धारण कर !

यह सम्पूर्ण वृतान्त एवं मुनिराज का धर्मोपदेश सुनकर वह (प्रवर किसान का जीव) गूंगा उनकी प्रदक्षिणा देकर मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा, आनन्दाश्रुओं से उसके नेत्र भर गये और वह गद्गद् वाणी में बोला – ''हे मुनिराज ! आप सर्वज्ञतुल्य हो, वस्तु के स्वरूप के प्रत्यक्ष दृष्टा हो ! त्रिलोक की रचना आपसे छिपी नहीं है। हे श्रीगुरु ! मेरे मनरूपी नेत्र अज्ञानरूपी पटल से आच्छादित थे। सो आपने ज्ञानरूपी अंजन से उस अज्ञानरूप पटल को दूर किया है। हे भगवन् ! आप प्रसन्न होकर मुझे दिगम्बरी दीक्षा प्रदान करो – ऐसा कहकर किसान मुनि हो गया। कितने ही जीवों ने श्रावक के व्रत अंगीकार किए; परन्तु ये दोनों भाई अग्निभूति व वायुभूति लज्जित होकर अपने घर गये।

उनके माता-पिता ने भी उन्हें खूब फटकार लगाई – इससे ये दोनों भाई मुनि के कारण अपना अपमान हुआ जानकर क्रोधित हो रात्रि में मुनिराज को मारने के लिये गये। उस समय वे सात्विक मुनि एकान्त में कायोत्सर्ग करके खड़े थे। इन दोनों भाईयों ने मुनिराज के ऊपर तलवार चलाई, तब वन के अधिष्ठाता यक्षदेव ने उन्हें बांध दिया और प्रात:काल होने पर लोगों ने उनका यह कृत्य देखकर बहुत निन्दा की और ये दोनों भाई भी मन ही मन अपने दुराचार की निन्दा करने लगे।

ये दोनों चित्त में चिंतवन करने लगे कि मुनिराज का महाप्रभाव है। हमने विनयाचार का उल्लंघन किया है। इस कारण कीलित (बंधन) हुए हैं। हमने जिनधर्म का फल प्रत्यक्ष देख लिया। अब यदि बंधन से छूटेंगे तो जिनधर्म की आराधना करेंगे। दोनों भाई ऐसा विचार करते हुए खड़े थे और उनके माता-पिता ने पुत्रों को बंधन में पड़ा जाना, सो वे दोनों आकर मुनिराज के चरणों में आ गिरे और मुनिराज को प्रसन्न करने लगे। मुनि तो महादयावान, ध्यानस्थ होकर खड़े थे। यह सब कार्य यक्षदेव ने जाना। वह महा-विनयवान होकर मुनिराज के सामने प्रगट हो गया।

मुनिराज ने ध्यान भंग होने पर उससे कहा कि हे यक्षराज ! इन ब्राह्मण पुत्रों को क्षमा करो। **कर्म की प्रेरणा से जीव के शुभाशुभ कार्य होते हैं।**

ये दोनों आगामी भव में श्री नेमिनाथ प्रभु के कुल में जन्म लेकर उनके साथ ही मोक्ष जाने वाले हैं। अत: तुम इन पर करुणा करो। इस प्रकार जब मुनिराज

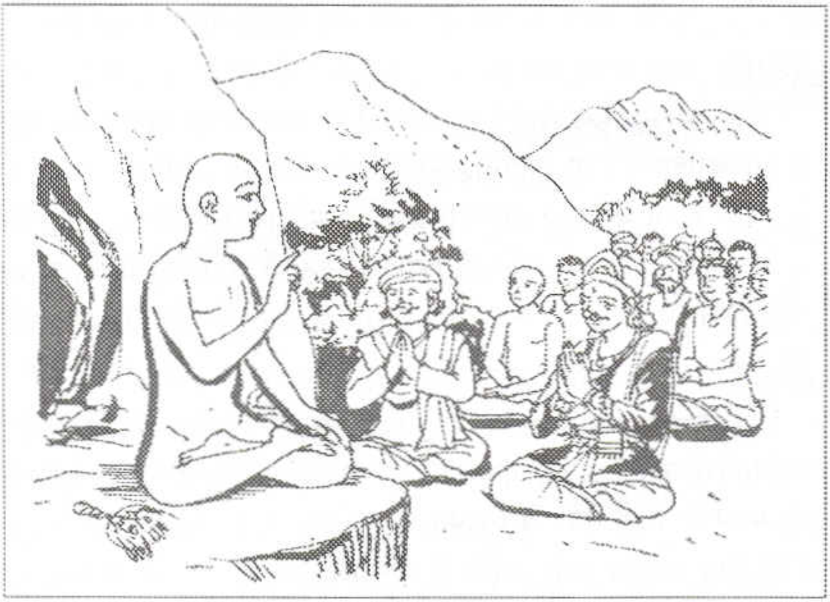

ने आज्ञा की, तब यक्षराज कहता है कि आप जैसी आज्ञा करेंगे वैसा ही होगा – ऐसा कहकर उसने उन विप्र-पुत्रों को बंधन से मुक्त कर दिया। वे विप्र-पुत्र भी मुनिराज के श्रीमुख से यति और श्रावक का धर्म श्रवण करके अणुव्रत लेकर श्रावक हो गये।

वे जीवनभर सम्यक्त्व सहित श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए अन्त में समाधिमरण करके पहले स्वर्ग में देव हुए और उनके माता-पिता जिनधर्म की अश्रद्धा करके मरे, इसलिये मिथ्यात्व के प्रभाव से दुर्गति में गये। वे दोनों भाई स्वर्गलोक का सुख भोगकर वहाँ से चयकर अयोध्यापुरी में समुद्रदत्त और धारिणी नामक सेठ-सेठानी के पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक पुत्र हुए, वे वहाँ भी सम्यक्त्व सहित महाजिनधर्मी हुए।

एक दिन महेन्द्रसेन नामक मुनिराज के मुख से धर्म श्रवण करके उनके पिता समुद्रदत्त मुनि हुए और साथ ही नगर के राजा व अन्य अनेक लोग भी मुनि हुए।

एक बार ये पूर्णभद्र और मणिभद्र रथ में बैठकर मुनिराजों के दर्शन के लिये जा रहे थे। वहाँ मार्ग में एक चाण्डाल और कुत्ती को देखकर उन्हें स्नेह उत्पन्न हुआ। अत: वे गुरु के समीप जाकर वन्दन करके पूछने लगे कि हे प्रभो ! हमको चाण्डाल और कुत्ती को देखकर स्नेह उत्पन्न होने का क्या कारण है ? तब अवधिज्ञानी मुनिराज कहते हैं कि ये विप्र के भव में तुम्हारे माता-पिता थे, तथा अपने पूर्व पाप के उदय से नरक में गये थे। अब नरक के दु:ख भोगकर चाण्डाल और कुत्ती हुए हैं।

श्रीगुरु के वचन सुनकर पूर्णभद्र और मणिभद्र ने उनके समीप जाकर उनके और अपने पूर्वभव सम्बन्धी समस्त वृतान्त बताते हुए उन्हें धर्मोपदेश दिया। वे दोनों भी उपदेश सुनकर शान्तचित्त हुए। चाण्डाल की आयु मात्र एक माह शेष थी। अत: उसने श्रावक के व्रत ग्रहण करके चारों प्रकार के आहार का त्याग कर समाधिमरण किया। इस कारण वह देव हुआ। और उस कुत्ती ने भी श्रावक के व्रत पालन कर समाधिमरण किया और अयोध्या के राजा के घर पुत्री हुई। उसकी यौवनावस्था होने पर राजा ने स्वयंवर रचा। वह वरमाला हाथ में लेकर वर को निरखती थी, उसी समय वह देव नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना हेतु वहाँ से निकला। उसने कन्या को देखते ही उसके कान में कहा कि – "हे अग्निज्वाला ! तू नरक के दु:ख भूल गई और अब विवाह करती है। अरे ! तुझे धिक्कार है !!"

देव के वचन सुनकर उस राजपुत्री ने संसार को असार जानकर सम्यक्त्व अंगीकार करके आर्यिका के व्रत धारण किये और परिग्रह का त्याग किया। इस प्रकार उसने नव यौवन में ही व्रत अंगीकार किये। पूर्णभद्र और मणिभद्र भाई भी श्रावक के व्रत पालन करके समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हुए और स्वर्ग का सुख भोगकर वहाँ से च्युत होकर राजा हेमनाथ की धरावती नाम की रानी के मधु और कौटभ नामक पुत्र हुए।

दोनों पुत्रों के बड़े होने पर राजा हेमनाथ ने मधु को राजा और कौटभ को युवराज पद देकर मुनिव्रत धारण कर लिये।

जब मधु और कौटभ दोनों भाई सुख पूर्वक राज्य करते थे; तब एक भीम नाम के राजा का एक क्षुद्र सामन्त, जिसका कि एक पहाड़ पर गढ़ था, वह उस गढ़ का गर्व करके राजा मधु के राज्य में उपद्रव करने लगा।

राजा मधु ने उसे वश में करने के लिये जाते समय मार्ग में वटपुर नामक नगर में पड़ाव डाला। वहाँ के राजा वीरसेन ने राज मधु का अतिविनय-सन्मान किया। राजा वीरसेन की रानी चन्द्राभा अतिरूपवती, मधुभाषिणी सुन्दरी थी। वह राजा मधु के मन का हरण करती है। यद्यपि राजा मधु की बुद्धि शास्त्रों में दृढ़ है तो भी चन्द्राभा को देखकर रागरूप हो गई। जिस प्रकार चन्द्रकांत मणि की शिला दृढ़ है तो भी चन्द्रमा को देखकर नरम हो जाती है। राजा मधु मन में विचारता है कि यदि मैं इस रूप-सौभाग्य से युक्त होकर राज्य करूँ तो राज्य सुखरूप है, इस स्त्रीरत्न के बिना यह राज्यलक्ष्मी श्रीविहीन है। जैसे चन्द्रमा कलंकी होने पर भी चांदनी से शोभता है, वैसे ही मुझे परस्त्री हरण का कलंक तो लगेगा, परन्तु हरण करने का मन हुआ।

राजा मधु बुद्धिमान होने पर भी हतबुद्धि हो गया। उसके बुद्धिमान प्रधानमंत्री ने कहा कि इस समय राजा भीम को वश करना है। अत: अन्य उपद्रव मत करो। यह बात राजा मधु को भी ठीक लगी। और वह राजा भीम को वश करके अयोध्या आया। चन्द्राभा के प्रति मन आसक्त है इसलिये बसन्त ऋतु का महोत्सव रचाया, जिसमें सभी राजाओं को आमन्त्रित किया। उस महोत्सव में रानी चन्द्राभा सहित राजा वीरसेन भी पधारे।

महोत्सव समाप्ति पर उसने समस्त राजाओं को तो सपरिवार वस्त्राभरण देकर विदा कर दिया; परन्तु राजा वीरसेन को विशेष सन्मान करके अकेले ही वटपुर के लिये विदा किया और उसकी रानी चन्द्राभा को यह कहकर अपने ही पास रोक लिया कि "अभी रानी चन्द्राभा के योग्य आभूषण तैयार हो रहे हैं, सो थोड़े ही दिनों में उनके योग्य आभूषण तैयार हो जायेंगे। तब हम चन्द्राभा को विदा करेंगे।" राजा वीरसेन तो भोला था, अंत: वह राजा मधु की इस बात का विशवास कर अकेला ही अपने राज्य वापस चला गया। तत्पश्चात् राजा मधु ने चन्द्राभा को अपने घर में रखा, पटरानी का पद दिया और उसके साथ पत्नि की भाँति व्यवहार करने लगा। राजा मधु

के जोर और भय के कारण रानी चन्द्राभा उसका विद्रोह तो न कर सकी, परन्तु मन ही मन अपने पति राजा वीरसेन को याद करके कुछ काल तक तो वह बहुत दु:खी रही, फिर धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो गया। इधर रानी चन्द्राभा के वियोगरूप अग्नि से दु:खी राजा वीरसेन विलाप कर-करके पागल हो गया तथा पागल होकर चन्द्राभा की रट लगाते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा।

एकबार विलाप करता, घूमता-घूमता वह राजा वीरसेन अयोध्या आ पहुँचा। उस समय रानी चन्द्राभा अपने महल के झरोखे में बैठी थी। वह अपने पति को देखकर दयावान होते हुए राजा मधु से कहती है कि हे नाथ! मेरे पूर्व के पति को देखो ! वह प्रलाप करके पागल हुआ घूमता है। पर राजा मधु ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया और राज-न्यायालय में चला गया। उसी समय राज-न्यायालय में कोतवाल एक परस्त्री लम्पटी को पकड़कर राजा मधु के पास लाया और कहा कि देव ! यह महापापी है, इसने परस्त्री सेवन जैसा महान अपराध किया है। परस्त्री सेवन का दण्ड राज न्याय में हाथ-पैर और शिर का छेद करना कहा है। सो राजा ने उसे भी यही कठोर दण्ड घोषित किया।

तब रानी चन्द्राभा ने यह सब जानते हुए भी राजा से पूछा कि हे नाथ! इसने ऐसा कौन-सा महापराध किया है कि इसे ऐसा कठोर दण्ड देते हो ? तब राजा ने कहा कि परस्त्री सेवन के समान अन्य कौन-सा बड़ा पाप है ? तब रानी चन्द्राभा ने कहा कि इस पाप का दण्ड प्रजा को ही है या राजा को भी है ? तब राजा ने कहा कि सबके लिये एक ही दण्ड है। तब रानी ने हँसकर अपना मुँह नीचा कर लिया, जिसका आशय यह था कि तुम भी परस्त्री-रत पापी हो। तब राजा मन ही मन इस अभिप्राय को समझकर हताश हो गया।

राजा मन में विचार करता है कि रानी ने मेरे कल्याण के लिये सत्य ही बात कही है। परस्त्री का हरण दुर्गति का कारण है। अत: राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया, रानी भी वैराग्यरूप हो गई। राजा को विरक्त जानकर रानी कहती है कि हे नाथ ! ऐसे अन्यायरूप भोग से क्या ? यह परस्त्री का विषय

किंपाकफल के सामान दु:खदाई है, बाह्य में मनोज्ञ लगे उससे क्या ? भोग तो अपने और पर को संतापकारी ही हैं। समस्त विषय शास्त्र से विरुद्ध है। परस्त्री-परधन हरण, माँस भक्षण आदि तो महापाप हैं। ऐसे पापों को करने वाले नरक-निगोद में जाते हैं – इसप्रकार रानी चन्द्राभा ने राजा मधु को सम्बोधित किया।

तब राजा मधु को साक्षात् वैराग्य हो गया। भोगरूपी मदिरा को तजकर अति-आदर से वह राजा मधु रानी चन्द्राभा से कहता है कि हे सत्यभासिनी! तूने सत्य ही कहा है। ऐसा कार्य भले पुरुष के योग्य नहीं है। उससे नरकादिक की पीड़ा उत्पन्न होती है। ऐसा करने वाले महापापी इस भव में दु:खी होकर अपयश प्राप्त करते हैं और परभव में नरक जाते हैं। मेरे जैसा राजा ही ऐसा निंद्यकर्म करता है तो प्रजा को कौन रोकेगा ? **जो अपनी स्त्री में भी अधिक राग करता है, वह भी निंद्य एवं तीव्र कर्मबन्ध का कारण है,** तब परस्त्री सेवन की तो बात ही क्या करें ?

अरेरे.... ! परस्त्री सेवन के समान अन्य कोई पाप नहीं है। राजा मधु को स्वयं के द्वारा रानी चन्द्राभा को छल एवं ताकत के बल पर अपने पास रोक कर रखना – अब एक निकृष्टतम पापरूप लग रहा था और उस पाप के प्रायश्चित करने के लिए वह अन्तरंग में छटपटाने लगा। वह बारम्बार विचार कर रहा था कि यह मनरूपी मत्त हाथी को ज्ञानरूप अंकुश द्वारा रोकने पर भी यह खोटे मार्ग में जाता है। इस मनरूप मतंग को तीव्रतपरूप अंकुश द्वारा खोटे मार्ग से वापस लाकर सही मार्ग में चलाने वाले धन्य हैं। काम-भोग की वासना से उन्मत्त हुए मनरूपी हाथी को तप-संयमरूप दण्ड द्वारा, जब तक वापस नहीं मोड़ा जाता, तब तक उस पर चढ़ने वाले को भय ही होता है। ऐसा कहकर राजा मधु ने मन का वेग रोककर ज्ञानरूपी जल से बुद्धि को निर्मल किया। अब राजा मधु भवातप की शान्ति के लिये मुनिव्रत धारण करने को उद्यमी हुआ ही था कि सोने में सुहागा की तरह उसी समय एक विमलवाहन नाम के मुनिराज अयोध्या के सहस्राम्र नामक वन में एक हजार मुनियों सहित पधारे। मुनियों का आगमन सुनकर राजा मधु और कौटभ

दोनों भाई सपरिवार साधुओं की वन्दना हेतु उनके समीप गये, विधिपूर्वक मुनिराज की पूजा करके धर्म का श्रवण किया।

जिसको संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य उत्पन्न हुआ है – ऐसे राजा मधु अपने भाई कौटभ सहित मुनिदीक्षा अंगीकार कर आत्मकल्याण के मार्ग पर लग गये। उनके साथ अन्य भी अनेकों राजाओं ने मुनिदीक्षा अंगीकार की। चन्द्राभा आदि अनेकों रानियों ने भी आर्यिका के व्रत अंगीकार किए। अनेक प्रकार से तप करके अन्तिम एक माह का संन्यास धारण करके शरीर त्याग कर राजा मधु सोलहवे स्वर्ग में इन्द्र हुआ और कौटभ देव हुआ, दोनों की आयु बाईस सागर थी। दोनों सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्गसुख भोगकर मनुष्य हुए। मधु का जीव रुक्मणी की कोख में कृष्ण नामक नौवे नारायण का प्रद्युम्न नाम का पुत्र हुआ और दूसरा भाई कौटभ भी देवलोक से चयकर उसी का भाई माता जाम्बूवति का शम्भुकुमार नाम का पुत्र हुआ।

ये दोनों भाई जन्म से ही परस्पर हित में उद्यमी महाधीर-वीर चरमशरीरी हैं और इसी भव से मोक्ष जायेंगे।

इधर राजा वीरसेन आर्तध्यान पूर्वक मरण कर चिरकाल तक संसार वन में भ्रमण करके मनुष्य हुआ और अज्ञान तप करके धूमकेतु नाम का असुर देव हुआ। उसने विभंग अवधि से पूर्वभव के स्त्री हरण का प्रसंग जानकर बैरभाव से बालक प्रद्युम्न का हरण किया है। धिक्कार है ऐसे बैर को जो पाप को बढ़ाने वाला है!

इस कथा से यह प्रेरणा मिलती है कि "एक शियाल जैसा तुच्छ प्राणी मनुष्य होकर मुनिहिंसा करने जाता है और मुनि के प्रभाव से जैनधर्म को ग्रहण करके उन्नत क्रम में परिणामों को उज्ज्वल करके श्री नेमिनाथ भगवान के कुल में जन्म लेकर अनेक आश्चर्यकारी विद्याओं को साधकर उनसे भी मोह त्यागकर मुनि होकर क्षपकश्रेणी मांडकर सर्व कर्मों का क्षयकर मोक्ष को प्राप्त करता है। अन्दर में विद्यमान सिद्ध स्वरूप कारणपरमात्मा का आश्रय कर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और लीनता के बल से मोह का सर्वथा नाश करके सिद्ध हो जाता है।"

– श्री हरिवंश पुराण पर आधारित

परिणाम नहीं बिगाड़ना
(द्रोपदी के जीव की भवावली)

इस भरतक्षेत्र में चम्पापुरी के राजा मेघवाहन की नगरी में सोमदेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी सोमीला रहते थे। उनके सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति नामक तीन पुत्र थे। उनके मामा अग्निभूति, मामी अग्निला के धनश्री, मित्रश्री एवं नागश्री नाम की तीन पुत्रियाँ थीं। इन तीनों का विवाह क्रमशः सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति के साथ हुआ।

– इसप्रकार अग्निभूति ब्राह्मण का आठ सदस्यीय खुशहाल परिवार था। इन आठों में से तीसरे भाई सोमभूति की पत्नी नागश्री धर्म से विमुख थी, शेष सभी जिनधर्मानुरागी, संसार शरीर से उदास और शास्त्रज्ञ थे।

एक दिन धर्मरुचि नाम के मुनिराज को पापिन नागश्री ने विष सहित आहार दिया। वे महामुनि समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि में गये और तीनों भाईयों ने नागश्री का यह निंद्यकार्य जानकर संसार से उदास हो वरण नामक मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली और धनश्री व मित्रश्री (दो भाईयों की पत्नियाँ) गुणवती आर्यिका के समीप आर्यिका हो गईं। संसार वास से विरक्त होकर तीनों मुनि और दोनों आर्यिकाएँ रत्नत्रय की शुद्धता के लिये तपश्चरण में उद्यमी हुए। श्री गुरु के मुख से दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद धारण कर सोमदत्त आदि तीनों मुनि और दोनों आर्यिकायें – ये पाँचों जीव आराधना आराधकर आरण-अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु के धारक देव हुए।

तीसरे भाई की पत्नी नागश्री, जिसने मुनिराज को आहार में विष दिया था, मरकर पाँचवें नरक गई। वहाँ सागरों पर्यन्त महादुःख भोगा। वहाँ से निकलकर तिर्यंच हुई तथा दो सागर तक त्रस-स्थावर अनेक योनियों में भ्रमण किया। तत्पश्चात् चम्पापुर के चाण्डाल की पुत्री हुई। वहाँ समाधिगुप्त मुनिराज का समागम होने से मद्य-मांस-मधु का त्याग किया। वहाँ से मरकर चम्पापुरी में ही सुबंधु नामक सेठ की सुकुमारिका नाम की पुत्री हुई; परन्तु पूर्व के पापोदय से शरीर रूपवान होने पर भी महादुर्गन्धयुक्त था, अतः सभी उसे दुर्गन्धा कहते थे। और इसी कारण कोई उससे विवाह नहीं करता था।

उसी चम्पापुरी में धनदेव नामक सेठ के दो पुत्र थे। उनमें से बड़े पुत्र जिनदेव के साथ दुर्गन्धा की सगाई होने से वह मुनि हो गया। उसका छोटा भाई जिनदत्त, उसने परिवार के आग्रह से दुर्गन्धा के साथ विवाह कर लिया; परन्तु वह भी उसे छोड़कर देशान्तर चला गया। इस कारण दुर्गन्धा अपनी निन्दा करती हुई अपने पूर्वकर्मों को कौसने लगी। एक दिन उसके घर में क्षाता नामक आर्यिका के आहार हुए। आहार के पश्चात् उनके साथ दो नई उम्र की आर्यिकाओं को देखकर दुर्गन्धा ने बड़ी आर्यिकाजी से पूछा कि हे माताजी ! ये दोनों आर्यिकायें अतिरूपवान हैं इनको नवयौवन में किस कारण वैराग्य हुआ है।

तब दयावान आर्यिका माताजी उनके वैराग्य का कारण दुर्गन्धा को प्रतिबोधनार्थ कहने लगीं – हे सुकुमारी ! जिस कारण से इन दोनों को वैराग्य हुआ वह तू भी सुन ! ये दोनों पूर्व भव में सौधर्म इन्द्र की देवियाँ थी। एक का नाम विमला था और दूसरी का नाम सुप्रभा। एक दिन ये नंदीश्वर में जिनपूजा के लिये गई थीं। वहीं इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब इन दोनों ने प्रतिज्ञा की कि देवगति में तो तप करने की योग्यता नहीं है, हम मनुष्य भव पाकर महातप करेंगे। जिससे स्त्री पर्याय का अभाव होकर भवभ्रमण का अभाव हो।

इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होकर देव पर्याय से च्युत होकर साकेतपुरी में राजा श्रीषेण की रानी श्रीकान्ता की पुत्रियाँ हुई। जब इन दोनों ने यौवन में प्रवेश किया, तब पिता ने इनका स्वयंवर रचा। उसी समय इन दोनों बहिनों को पूर्व जन्म की प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया और इससे वे परिवार का त्याग करके आर्यिका हुईं हैं। आर्यिका माताजी के इन वचनों को सुनकर दुर्गन्धा को भी वैराग्य हो गया; अत: वह भी आर्यिका हो गई और उन आर्यिका माताजी के साथ उपवासादि तप करके उसने शरीर को तो सुखा दिया; पर भावपूर्ण हो कर्मों को नहीं खिरा सकी।

एक दिन वन में पाँच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करने बसंतसेना वैश्या आई। उसे देखकर दुर्गन्धा को ऐसा भाव हुआ कि यह कैसी सौभाग्यवती है। यह परिणाम होने से अपयशप्रकृति का बंध हुआ। तत्पश्चात् वह समाधिमरण

करके स्वर्ग में उस देव की देवी हुई, जो देव पूर्व में इसका (नागश्री का) पति था और जिसका नाम सोमभूति ब्राह्मण था। वहाँ की आयु पूर्ण करके वहाँ से च्युत होकर सोमभूति का जीव तो कुंती पुत्र अर्जुन हुआ और सोमदत्त, सोमदेव ये दोनों भी रानी कुंती के पुत्र युधिष्ठर और भीम हुए और धनश्री, मित्रश्री के जीव रानी माद्री के नकुल और सहदेव नाम के पुत्र हुए और नागश्री का जीव राजा द्रुपद की रानी दृड़रथा के द्रोपदी नाम की पुत्री हुई। पूर्व भव के स्नेहवश अर्जुन के साथ उसका विवाह हुआ। विवाह के समय जब द्रोपदि अर्जुन के गले में वरमाला पहना रही थी, तभी अर्जुन के चारों भाई भी उसके ही पास खड़े थे और वरमाला पहनाते समय वरमाला टूट कर विखर गई और फूल पास खड़े चारों भाइयों के ऊपर जा गिरे। तब वहाँ उपस्थित लोग यह कहकर उसकी हँसी करने लगे कि ''द्रोपदि ने तो पाँचों का वरण किया है।'' इसीलिए लोक में उसे पंचभरतारी के अपमान से अपमानित होना पड़ा।

पूर्वभव का यह वृतान्त श्रीमद्नेमिजिनेन्द्र की दिव्यध्वनि से पाण्डवों ने जाना और यह भी जाना कि युधिष्ठर, भीम, अर्जुन तीनों भाई इसी भव से मोक्ष जायेंगे। और नकुल-सहदेव सर्वार्थसिद्धि जाकर एक भव धारण करके मोक्ष जायेंगे। द्रोपदी शुद्ध तप के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग में देवी होगी और वहाँ से मनुष्य होकर निरंजन धाम प्राप्त करेगी। इस प्रकार पूर्व की भवावली सुनकर उन्होंने संसार से विरक्त होकर तत्काल जिनेश्वर के समीप संयम अंगीकार किया। माता कुंती, द्रोपदी, सुभद्रा आदि अनेक रानियाँ राजमति आर्यिका के समीप आर्यिका हो गईं।

द्रोपदि ने दुर्गन्धा के भव में आर्यिका होने पर भी वैश्या के साथ पाँच पुरुषों को देखकर उसे सौभाग्यशाली माना, इसी से उसे अपयश प्रकृति का बंध हुआ इसीलिए वह लोक में पंच भरतारी कहलाई और नागश्री के भव में मुनिराज को विषमय आहार दिया जिसके फल में सागरों तक नरकादि के दुःखों को भोगा। अतः ऐसा जानकर परिणाम नहीं बिगाड़ना – यह बोध है।

– हरिवंश पुराण से साभार

एक मोक्ष में दूसरा नरक में

(बलभद्र, वासुदेव की वैराग्य प्रेरक कथा)

वसुदेव भगवान नेमिनाथ के पिता श्री समुद्रविजय राजा के छोटे भाई थे। एक बार उन्होंने अपनी पत्नी देवकी के साथ चारण ऋद्धिधारी अवधिज्ञानी मुनि अतिमुक्त स्वामी को वंदन-नमस्कार करके अपनी पत्नी देवकी के गर्भ से होने वाले पुत्रों के सम्बन्ध में पूछा कि लोग कहते हैं कि 'तुम्हारे पुत्रों की मृत्यु कंस के द्वारा होगी।' क्या यह बात सत्य है या मात्र मन की भ्रान्ति ? प्रभो ! हमारी शंका का समाधान करने की कृपा करें।

तब मुनिराज ने कहा कि हे भव्य ! देवकी के होने वाले पुत्रों की मृत्यु कंस के द्वारा नहीं होगी। इस सम्बन्ध में जो सत्य है, वह मैं कहता हूँ, जिसे सुनकर तुम्हारी सभी भ्रान्ति दूर होगी।

देवकी का सातवाँ पुत्र नौवाँ नारायण होगा और वह तीन खण्ड के राज्य का भोक्ता बनेगा। और उससे बड़े छह भाई तद्भव मोक्षगामी होंगे। उनकी मृत्यु कंस के द्वारा नहीं होगी। इसलिये तुम चिन्ता मत करो। सात पुत्र तो देवकी के होंगे और एक पुत्र रोहिणी के होगा जो कि बलभद्र होगा। मैं इन सबके पूर्वभव तुम्हें कहता हूँ, तुम उन्हें सुनो। उनके भव तुम्हारे मन को आनन्दकारी हैं।

राजा सूरसेन के राज्य में मथुरा नगरी में बारह करोड़ द्रव्य का स्वामी एक भानु नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम यमुना था। उसके सुभानु आदि सात पुत्र थे। भानु सेठ को संसार से वैराग्य होने पर वह अभयनन्दि मुनिराज के समीप दीक्षा लेकर मुनि हो गये और सेठानी यमुना जिनदत्ता आर्यिका के समीप आर्यिका हो गईं।

भानु सेठ के दीक्षित होने के पश्चात् उनके सुभानु आदि सातों पुत्रों ने जुआ और वैश्यागमन आदि में पिता का समस्त द्रव्य नष्ट कर दिया। द्रव्य नष्ट हो जाने से वे सातों भाई चोरी करने के लिये उज्जैनी में गये। सुभानु का सबसे छोटा भाई सूरसेन था। उसे महाकाल नामक श्मशान में वंश परम्परा की

रक्षा के लिये रखकर सुभानु आदि छह भाई चोरी करने के लिये नगरी में गये और छोटे भाई सूरसेन से कह गये कि यदि चोरी करते हुए हम मर जायें तो तू यहाँ से भाग जाना और यदि हम वापस आ गये तो चोरी से प्राप्त धन में से तुझे बराबर का हिस्सा देंगे – ऐसा कहकर छहों भाई चोरी करने चले गये और सातवाँ छोटा भाई सूरसेन श्मशान में बैठकर उनका इन्तजार करने लगा। इसी समय एक नवीन प्रसंग बना है, वह सुनो –

उज्जैनी नगरी का राजा वृषभध्वज था। उसके दृष्टिमुष्टि नाम का महा योद्धा था, उसके वप्रश्री नाम की स्त्री थी, उसके वज्रमुष्टि नाम का पुत्र था, जिसका विवाह राजा विमलचन्द्र की मंगी नाम की पुत्री के साथ हुआ था। मंगी अपने पति वज्रमुष्टि को बहुत प्रिय थी। मंगी अपनी सास की सेवा में प्रमादी थी, इस कारण उसकी सास का चित्त कलुषित रहता था। अतः सास ऐसा उपाय सोचती थी कि किसी प्रकार मेरा पुत्र मंगी से विरक्त हो अथवा मंगी मर जाए।

एक समय बसंत ऋतु के उत्सव में वज्रमुष्टि वन में क्रीड़ा करने गया और पीछे से मंगी की सास ने घड़े में सर्प रखकर कपट पूर्वक मंगी से कहा – बहू ! इस घड़े में मोती की माला है, तू उसे निकालकर पहिल ले। मंगी ने मोती की माला लेने के लिए घड़े में हाथ डाला तो तुरन्त उसे सर्प ने डस लिया, जिससे वह तुरन्त ही मूर्छित हो गई, तब उसकी सास ने सेवकों को आज्ञा दी कि इस मंगी को श्मशान में डाल आओ। सेवक आज्ञानुसार मंगी को महाकाल श्मशान में डाल आये। तत्पश्चात् रात्रि में मंगी का पति वज्रमुष्टि घर आया और प्राणप्रिय मंगी को सर्प डसने आदि के समाचार जानकर अत्यन्त ही दुःखी हुआ। वह तुरन्त एक हाथ में नंगी तलवार और एक हाथ में दीपक लेकर महाकाल श्मशान में मंगी को खोजने चल पड़ा।

उसी रात्रि महाकाल श्मशान में वरधर्म नाम के मुनिराज प्रतिमायोग धारण करके विराजमान थे, उन्हें देखकर वज्रमुष्टि अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा की और नमस्कार कर कहने लगा –

'हे पूज्यपाद ! यदि मेरी स्त्री मुझे मिल जाए तो मैं सहस्रदल पुष्प से

आपकी पूजा करूँगा।' अहो ! संसारी विषयप्रेमी को किसी पूर्व पुण्य के उदय से मुनिराज का भी समागम हो जाए तो वह मुनिराज को योग्य व्यवहार विनय करने के बाद अपने सांसारिक दु:खों को ही रोएगा और उन्हें अपने सांसारिक दु:ख दूर करने के लिए तथा सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए प्रलोभन भी देगा; परन्तु सांसारिक सुखों से पार आत्मिक सुख के बारे में नहीं सोचेगा। – ऐसा सांसारिक सुखों की पूर्ति हेतु वज्रमुष्टि ने भी मुनिराज की प्रदक्षिणा-वन्दना की।

उसकी भली होनहार थी, जो उसे खोजते हुए मूर्छित अवस्था में मंगी मिल गई। अतः वह उसे मूर्छित अवस्था में उठाकर मुनिराज के चरणों के समीप ले गया। मुनिराज ऋद्धिधारक थे, उनके प्रभाव से मंगी निर्विष हो गई। वज्रमुष्टि अपनी स्त्री को निर्विष जानकर बहुत प्रसन्न हुआ इसके पश्चात् अपनी पत्नी को मुनिराज के समीप बैठाकर सहस्रदल पुष्प लेने के चला गया और मंगी से कह गया कि जब तक मैं नहीं आऊँ तब तक तुम मुनिराज के समीप बैठना।

मंगी मुनिराज के समीप बैठ गई है और उसका पति सहस्रदल पुष्प लेने के लिए सरोवर की तरफ गया। इधर चोरों का सातवाँ भाई सूरसेन यह सब देख रहा था, वह सोचने लगा कि देखो यह वज्रमुष्टि अपनी पत्नी से कितना प्रेम करता है, भले ही इसकी पत्नी इससे इतना प्यार नहीं करती हो। सूरसेन मन में विचारने लगा कि जरा इसकी परीक्षा करके तो देखूँ, क्या यह भी उससे इतना ही प्यार करती है ?– ऐसा विचारकर उसकी परीक्षा करने के लिये वह महारूपवान सूरसेन चोर मीठे वचनों से उसके साथ बातचीत करने लगा।

मंगी सूरसेन का रूप देखकर और मीठे वचन सुनकर कामाग्नि से विह्वल होकर कहने लगी कि हे देव ! कृपा करके मुझे अंगीकार करो। तब सूरसेन चोर ने कहा कि तेरा पति महा बलवान योद्धा होने से मैं उससे डरता हूँ। तब वह स्त्री बोली कि हे नाथ ! तुम भय मत करो। मैं अपने पति को तलवार से मार दूँगी। तब सूरसेन ने कहा – 'यदि तू अपने पति को मार देगी तो मैं तुझे अंगीकार

करूँगा' ऐसा झूठ वचन कहकर वह चोर उस स्त्री का कार्य देखने के लिये छिपकर बैठ गया।

जब मंगी का पति वज्रमुष्टि मुनिराज को पुष्प चढ़ाकर नमस्कार कर रहा था, तब मंगी पीछे से अपने पति को तलवार से मारने जा रही थी, उस समय गुप्त रूप से देखते हुए सूरसेन ने तुरन्त ही उस स्त्री का हाथ पकड़कर वज्रमुष्टि को बचा लिया और फिर स्वयं छिप गया। मंगी अपना दोष छिपाने के लिये मूर्छा का बहाना करके गिर पड़ी। यह देखकर वज्रमुष्टि ने कहा कि हे प्रिये ! तू डर कैसे गई ? यहाँ भय का कोई कारण नहीं है – ऐसा कहकर धैर्य बंधाकर मुनिराज को वंदन करके पत्नी को साथ लेकर वह अपने घर चला गया।

इस प्रसंग को देखकर सूरसेन का चित्त संसार से विरक्त हो गया। सूरसेन चोर के जो छह भाई चोरी करने नगर में गये थे, वे चोरी करके बहुत सा द्रव्य लाये। और उसके सात भाग करके छोटे भाई सूरसेन से कहा कि 'ये सातवाँ भाग तुम्हारा है, सो तुम अपना हिस्सा संभाल लो।' तब सूरसेन ने अपना भाग नहीं लिया और कहा कि संसारी जीव स्त्री-पुत्रादिक के लिये धन उपार्जित करता है, परन्तु स्त्री की चेष्टा तो मैंने आज प्रत्यक्ष देखी है। तब उसके बड़े भाई सुभानु आदि ने पूछा कि तूने ऐसा क्या देखा है? तब उसने वज्रमुष्टि और मंगी (पति-पत्नी) का सम्पूर्ण वृतान्त कहा, जिसे सुनकर सातों भाई संसार से विरक्त होकर वरधर्म मुनिराज के समीप दीक्षित होकर मुनि हो गये और उनके साथ विहार कर गये।

नगर-नगर में विहार करते हुए, भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हुए वे सातों मुनिराज अपने गुरु के साथ एक बार फिर उज्जैनी आये। वज्रमुष्टि ने उन्हें देखा और उनको नमस्कार कर कम उम्र में वैराग्य होने का कारण पूँछा। तब उसे अपनी स्त्री का सर्व वृतान्त ज्ञात हुआ, जिससे वह भी संसार से विरक्त होकर मुनि हो गया। सूरसेन आदि सातों भाइयों की स्त्रियाँ भी अपने पति को संसार से विरक्त जानकर जिनदत्ता आर्यिका के समीप दीक्षित होकर आर्यिका हो गई थीं। वे भी एक समय उज्जैनी नगरी में आईं। तब मंगी भी उनके वैराग्य

का वृतान्त जानकर संसार से विरक्त हुई। और अपने खोटे चरित्र की निन्दा करती हुई गृहत्याग कर आर्यिका हो गई।

✦ ✦ ✦

ये सभी महातप करके प्रथम स्वर्ग में एक सागर की आयु वाले देव हुए।

तत्पश्चात् धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र में नित्यलोक नामक नगर में चित्रचूल राजा की मनोहरी रानी के सातों भाइयों में से बड़ा भाई सुभानु का जीव प्रथम स्वर्ग से आकर चित्रांगद नामक पुत्र हुआ और छहों भाई भी उन्हीं माता-पिता के यहाँ तीन युगल पुत्र हुए। इस प्रकार यहाँ भी वे सातों भाई सहोदर ही हुए। सातों भाई महारूपवान समस्त विद्या के पारगामी मनुष्यों के शिरोमणी हुए।

इधर मेघपुर नामक नगर के राजा धनंजय की धनश्री नाम की रूपवान पुत्री पृथ्वी पर बहुत प्रसिद्ध थी। उसके विवाह हेतु आयोजित स्वयंवर में समस्त विद्याधर कुमार आये थे। कन्या धनश्री ने अपने मामा के पुत्र हरिवाहन को वरमाला पहिनाई, इसे देखकर समस्त राजा क्रोधयुक्त हो गये कि यदि धनश्री को हरिवाहन को ही वरमाला पहिनानी थी, तो हम सबको किसलिये बुलाया गया? इस प्रकार क्रोध से कन्या के लिये वे राजा परस्पर लड़ने लगे और उसमें अनेक सामन्तों का नाश हुआ।

इस प्रसंग को देखकर राजा चित्रचूल के सातों राजकुमारों ने विषय-भोगों को पाप का कारण अर्थात् दुःखदायक जानकर संसार से विरक्त हो भूतानन्द केवली के समीप मुनिव्रत धारण किये और आराधना करके सातों भाई चौथे स्वर्ग में सात सागर की आयु वाले देव हुए। स्वर्ग का सुख भोगकर वहाँ से चयकर चित्रांगद नाम का बड़ा भाई भरत क्षेत्र के हस्तिनापुर में सेठ श्रोतवाहन की स्त्री बंधुमति के शंख नाम का पुत्र हुआ और छोटे छह भाइयों ने भी उसी नगरी के राजा गंगदेव की रानी नंदियशा के तीन युगल पुत्रों के रूप में जन्म लिया।

रानी नंदियशा के चौथे गर्भ धारण में सातवाँ पुत्र निर्नामिक आया, वह

आगामी जन्म में होनहार कृष्ण है। वह माता नंदियशा का पूर्वभव का विरोधी था। अतः वह गर्भ में आया तभी से राजा को रानी अरुचिकर हो गई; इस कारण रानी ने पुत्र को जन्मते ही छोड़ दिया। उस पुत्र का पालन रेवती नामक धाय ने किया और जब वह बड़ा हुआ, तब श्रेष्ठीपुत्र शंख के और इस निर्नामिक के स्नेह बढ़ गया; क्योंकि शंख तो होनहार बलभद्र का जीव था और निर्नामिक होनहार कृष्ण नारायण का जीव था।

एक दिन निर्नामिक शंख के साथ मनोहर नामक उद्यान में गया। वहाँ निर्नामिक के छहों भाई भोजन कर रहे थे, उनसे शंख ने कहा – यह तुम्हारा छोटा भाई है इसे क्यों नहीं बुलाते? इससे छहों बड़े भाइयों ने निर्नामिक को बुलाया और साथ भोजन करने लगे। निर्नामिक को साथ में भोजन करता देखकर माता नंदियशा को गुस्सा आ गया और उसने क्रोध में आकर निर्नामिक को लात मारकर उठा दिया। इससे निर्नामिक को बहुत दुःख हुआ और शंख भी खेद-खिन्न हुआ और वह निर्नामिक को लेकर द्रुमसेन नामक अवधिज्ञानी मुनिराज के पास गया व उनसे निर्नामिक के पूर्वभव पूछे।

✦ ✦ ✦

मुनिराज ने निर्नामिक के पूर्वभव के विषय में कहा कि गिरिनगर नाम के नगर का राजा चित्ररथ था। वह कुबुद्धियों के संग में माँसाहारी हो गया। उसके अमृत-रसायन नाम का रसोइया था, वह माँस की रसोई बनाने की विधि में प्रवीण था – इस कारण राजा ने उस पर प्रसन्न होकर उसे दस गाँव भेंट दे दिये।

एक दिन राजा ने सुधर्म नामक मुनि के पास धर्म श्रवण करके माँस के दोष जानकर अपनी निन्दा करके अपने मेघरथ नाम के पुत्र को राज्य देकर तीन सौ राजाओं के साथ मुनि से दीक्षा ले ली। मेघरथ श्रावकव्रतों का धारक था। "मेरे पिता को इस रसोइया ने अभक्ष्य भोजन कराया है" – ऐसा जानकर क्रोधित होकर मेघरथ ने पिता द्वारा दिये हुए दस गाँवों में से नौ गाँव उससे वापिस छीन लिये। इससे रसोइया ने चित्ररथ मुनि के ऊपर बैर भाव कर लिया। इसलिये उसने बनावटी पक्का श्रावक बनकर मेघरथ के पिता चित्ररथ मुनि को विषमय कड़वी तुम्बी का आहार दिया। फलतः मुनि समाधिमरण करके

अपराजित विमान में बत्तीस सागर की स्थिति वाले अहमिन्द्र हुए और वह रसोइंया मरकर तीसरे नरक गया और वहाँ तीन सागर तक नरक के दुःख भोगकर वहाँ से निकल कर तिर्यंच गतिरूप वन में बहुत भ्रमण करके मलय नामक देश के पलाश गाँव में यक्षदत्त के यहाँ यक्षलिक नाम का पुत्र हुआ।

+ + +

एक दिन यक्षलिक सामान की गाड़ी भरकर अपने छोटे भाई के साथ जा रहा था। वहाँ रास्ते में एक सर्पिणी थी। छोटे भाई के बारम्बार मना करने पर भी बड़े भाई यक्षलिक ने सर्पिणी के ऊपर गाड़ी चला दी, जिससे उसकी देह छूट गई और वह महा दुःख से अकाम निर्जरा करके मरण को प्राप्त हुई और वहाँ से श्वेतविक नाम की नगरी में वासव राजा की रानी वसुन्दरी के नंदियशा नाम की पुत्री हुई, जिसका विवाह राजा गंगदेव से हुआ।

कितने ही दिन पश्चात् यक्षलिक मरकर रानी नंदियशा के निर्नामिक नाम का पुत्र हुआ – इस कारण पूर्वभव के विरोध से नंदियशा पुत्र निर्नामिक के प्रति द्वेष रखती है।

मुनिराज के पास से यह कथा सुनकर राजा गंगदेव आदि सब संसार से विरक्त होकर अपने देवनंदि पुत्र को राज्य सोंपकर दो सौ राजाओं के साथ मुनि हो गये। साथ ही उनके छहों पुत्र और निर्नामिक तथा श्रेष्ठिपुत्र शंखादि भी मुनि हुए। रानी नंदियशा, रेवती धाय और बंधुमति सेठानी ये तीनों भी आर्यिका हो गईं।

+ + +

आगे अतिमुक्त मुनिराज वसुदेव से कहते हैं कि निर्नामिक मुनि ने उग्र तप करके नारायण पद का निदान किया है और वह तप के प्रभाव से समाधिमरण करके स्वर्ग में गया है। स्वर्ग से चयकर रेवती धाय भद्रलपुर में सुदृष्टि नामक सेठ की अलंका नाम की स्त्री हुई। रानी नंदियशा देवकी हुई और उसके पूर्वभव के छहों पुत्र स्वर्ग से आकर इस भव में देवकी के तीन युगल पुत्र होंगे, वे तद्भव मोक्षगामी, गुणों के समुद्र होंगे और अलंका नामक सेठानी के तीन मृतक युगल पुत्र होंगे।

इन्द्र की आज्ञा से देव अलंका के यहाँ देवकी के तीन युगल पुत्रों को ले जायेगा और अलंका के मृतक तीन युगल पुत्र यहाँ लायेगा। तेरे पुत्र भद्रलपुर में सुदृष्टि सेठ के घर अलंका सेठानी के यहाँ जवान होंगे और श्री नेमिनाथ जिनेश्वर के शिष्य होकर वे तीनों युगल मुनि तेरे घर आहार के लिये आयेंगे। उनके प्रति तुझे पुत्रवत् स्नेह उत्पन्न होगा। 'वे छहों महामुनि उग्रतप करके कर्मों का अभाव करके उसी भव में सिद्धधाम पधारेंगे।' तथा सात चोर भाइयों में से बड़ा भाई सुभानु-श्रेष्ठिपुत्र शंख रोहिणी का पुत्र बलभद्र होगा और मांसभक्षक, मुनिहिंसक रसोइया-निर्नामिक का जीव देवकी का सातवाँ पुत्र श्रीकृष्ण नारायण होगा।

इस प्रकार वसुदेव अपने तीन युगल पुत्रों बलदेव, नारायण, देवकी के पूर्वभव आदि का वृतान्त अतिमुक्त मुनि के द्वारा सुनकर परम हर्षित हुए और मुनिराज को बारम्बार वंदन कर अपने घर गये।

आश्चर्य है कि सप्त व्यसनों में लिप्त सात चोरभाई एक अन्य स्त्री के दुश्चरित्र को देखकर मुनिराज के धर्मोपदेश द्वारा आत्मोन्नति के मार्ग में प्रयाण कर गये।

अहो ! देखो तो सही ! पूर्वभव में संकल्प पूर्वक नागिन को गाड़ी के नीचे दबाकर मार देने वाला (श्री कृष्ण का जीव) आगामी भव में उसी का पुत्र होकर जन्मता है। क्रोध से जिस नागिन के जीव को मारा वही माता बनी।

अरे देखो परिणामों की विचित्रता ! पूर्वभव में जिसने मुनिराज को कड़वी तुम्बी का आहार कराके मुनिहिंसा जैसा निकृष्ट पाप किया था, तथा मांसभक्षी था, वही रसोइया (कृष्ण का जीव) भविष्य में तीर्थंकर होगा।

अहा ! देखो तो जीव की शक्ति ! पूर्व का महापापी जीव भी अनन्त शक्ति से परिपूर्ण ज्ञायक स्वभाव की महिमा लाकर स्वभावसन्मुख दृष्टि करके भगवान बन जाता है।

– हरिवंशपुराण पर आधारित

शुद्ध अनुभूति प्रगटाना पुनर्जन्म है।

– पूज्य स्वामीजी

निजात्म साधना का चमत्कार

(जयकुमार-सुलोचना के पूर्वभवों पर आधारित)

("जिसने अनेक भवों तक सम्राट चक्रवर्ती भरत के सेनापति का पद भार सम्हाला – ऐसे तद्भव मोक्षगामी जयकुमार को मारनेवाले जीव की उन जयकुमार से भी पूर्व मुक्ति हो गई" – इस चमत्कार को बताने वाली कथा को यहाँ आदिपुराण भाग-2 के आधार से दिया जा रहा है। इसे पढ़कर पाठकगण सच्चे धर्म की पहिचान कर सच्चे धर्म को अंगीकार कर मुक्तिमार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।)

हस्तिनापुर के महाराजा सोमप्रभ का पुत्र जयकुमार भरत चक्रवर्ती का धर्मनिष्ठ और शूरवीर सेनापति था। एक दिन सेनापति जयकुमार अपनी रानी सुलोचना के साथ कुटुम्बीजनों सहित महल की छत पर बैठे हुए थे। उन्होंने ऊपर से जाते हुए एक कबूतर-कबूतरी को देखा, जिन्हें देखते ही जयकुमार के मुख से 'हा ! प्रभावती तू कहाँ है?' यह शब्द निकले, और वे तत्काल ही मूच्छित हो गए। सुलोचना को भी उन कबूतर-कबूतरी को देखते ही जातिस्मरण हुआ और वह भी 'हा ! मेरा रतिकर कहाँ है?' इन शब्दों को बोलकर मूर्छित हो गई। जब वे दोनों होश में आये तब पति की आज्ञानुसार रानी सुलोचना ने अपने पूर्व भवों का वर्णन परिवारजनों के सामने इसप्रकार किया –

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती नाम का देश है, उसकी मृणालवती नगरी में राजा सुकेतु राज्य करते थे। उस नगरी में एक रतिवर्मा नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम कनकश्री था; उनके एक भवदेव नाम का पुत्र था, जो चरित्रहीन था। इसी नगरी में एक श्रीदत्त नाम का सेठ भी रहता था, उसकी पत्नी का नाम विमलश्री और पुत्री का नाम रतिवेगा था। भवदेव के माता-पिता ने रतिवेगा के माता-पिता के समक्ष भवदेव के विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसके फलस्वरूप दोनों पक्ष सहमत हो गए।

अशोकदेव नाम का एक तीसरा सेठ भी इसी नगरी का वासी था।

उसकी पत्नी का नाम जिनदत्ता और पुत्र का नाम सुकान्त था। सुकान्त हमेशा धर्म कार्यों में संलग्न रहता था।

कुछ समय बाद भवदेव धन कमाने की इच्छा से परदेश जा रहा था। उस समय उसने रतिवेगा के पिता श्रीदत्त से कहा कि मैं बारह वर्ष तक वापस नहीं आऊँ तो तुम रतिवेगा का विवाह अन्य के साथ कर सकते हो। कर्म संयोग से हुआ भी ऐसा ही, कि भवदेव बारह वर्ष बीतने के बाद भी वापस नहीं आ सका। अतः बारह वर्ष बीतने के पश्चात् श्रीदत्त ने रतिवेगा का विवाह अशोक सेठ के बेटे सुकान्त के साथ विधि पूर्वक कर दिया। तत्पश्चात् जब भवदेव परदेश से वापस आया और उसने सारा वृतान्त सुना, तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने सुकान्त एवं रतिवेगा को जान से मारने का यत्न आरम्भ कर दिया।

यह बात जानकर भय के कारण सुकान्त और रतिवेगा वन में चले गये। वहाँ एक सुन्दर सरोवर था। उस सरोवर पर शक्तिषेण नाम का राजा ठहरा हुआ था। वे दोनों राजा शक्तिषेण की शरण में पहुँच गये तथा निर्भय होकर रहने लगे। उन भव्य जीवों के सुकर्म योग से वहाँ एक चारणऋद्धिधारी मुनिराज आहार के लिये पधारे और राजा शक्तिषेण ने प्रसन्नचित्त से नवधाभक्तिपूर्वक मुनिराज को आहार दिया तथा पूजा-भक्ति पूर्वक उनका सम्मान किया। इस विधि को देखकर वे दम्पत्ति सुकान्त और रतिवेगा अत्यन्त हर्षित हुए और अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हुए मन में दयाभाव धारण कर वहीं अपना समय व्यतीत करने लगे।

✦ ✦ ✦

एक समय मोका मिलते ही दुष्ट भवदेव ने वहाँ आकर उन दोनों को जलाकर मार डाला और राजा शक्तिषेण के सुभटों ने दुष्ट भवदेव को मार डाला। इसलिये कहावत है कि **जो दूसरों के लिये कुआँ खोदता है, उसके लिये पहले से ही कुआँ तैयार रहता है।**

पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था और वहाँ एक कुबेरमित्र नाम का सेठ भी रहता था। उस सेठ की

बत्तीस स्त्रियों में धनवती नाम की सेठानी सबसे मुख्य थी। इस सेठ के घर सुकान्त का जीव रतिकर नाम का कबूतर और रतिवेगा का जीव रतिसेना नाम की कबूतरी हुई। यह दोनों कबूतर-कबूतरी सेठ के घर में आनन्दपूर्वक अपना समय बिताने लगे।

एक बार चारण ऋद्धिधारी मुनिराज आकाश मार्ग से सेठ के यहाँ आहार के लिये पधारे। उन्हें देखकर सेठ-सेठानी के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने शुद्धभाव से मुनिराज का पड़गाहन किया तथा नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया। उस समय कबूतर-कबूतरी के जीव ने भी भक्तिभाव से मुनिराज के चरण कमलों के दर्शन किये और पंख फैलाकर चरणों का स्पर्श किया। मुनिराज के दर्शन मात्र से ही उन दोनों को अपने पूर्वभव का जातिस्मरण ज्ञान हुआ और उन्होंने आहारदान की बहुत अनुमोदना की, जिसके प्रभाव से उनके महान पुण्य का बंध हुआ।

एक समय की बात है कि वे दोनों कबूतर-कबूतरी दाना चुगने के लिये अन्य गाँव में गये। वहाँ उनके पूर्वभव का शत्रु भवदेव का जीव मरकर बिलाव हुआ था। वह अपने पूर्वभव के बैर के कारण इन दोनों को मारकर खा गया। इसलिये ग्रन्थकार का कहना है कि **कभी भी किसी के साथ बैरभाव मत रखो, यह बैरभाव ही भव-भवान्तर में जीव को दुःख देने वाला है।**

✦ ✦ ✦

विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में गांधार देश की शींखली नाम की सुन्दर नगरी का राजा आदित्यगति और रानी शशिप्रभा थी। रतिकर नाम का कबूतर (सुकान्त का जीव) मरकर उन राजा-रानी का हिरण्यवर्मा नाम का पुत्र हुआ। और विजयार्द्ध की उत्तरश्रेणी के गौरी देश के भोगपुर नाम की नगरी के विद्याधर राजा वायुधर की स्वर्णप्रभा नाम की रानी के गर्भ से वह रतिसेना नाम की कबूतरी (रतिवेगा का जीव) प्रभावती नाम की पुत्री हुई।

प्रभावती का विवाह हिरण्यवर्मा के साथ हुआ। योगानुयोग अनुसार कुछ दिनों के पश्चात् प्रभावती को एक कबूतर-युगल को उड़ते देखकर अपने पूर्वभव की याद आ गई। तत्पश्चात् एक दिन प्रभावती और हिरण्यवर्मा ने

एक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज से अपने पूर्वभव का वृतान्त सुना। जिसे सुनकर अपने पूर्वभव सम्बन्धी ज्ञान होने पर उन दम्पत्ति में अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गई।

किसी एक समय किसी निमित्त के मिलने से हिरण्यवर्मा संसार-शरीर और भोगों से विरक्त हो गया और अपने पुत्र को राज्य सोंपकर स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली। अपने पति को दीक्षित होते देखकर प्रभावती ने भी गुणवती आर्यिका के समीप आर्यिका दीक्षा ले ली।

कुछ दिनों के बाद गुणवती आर्यिका के साथ प्रभावती ने वहाँ से विहार किया और विहार करते-करते पुण्डरीकणी नगरी में आ पहुँची। वहाँ प्रभावती को देखकर धनवती सेठानी ने गुणवती आर्यिका से पूछा कि यह कौन है ? जिसे देखकर मेरे हृदय में स्नेह आता है। इसका कारण क्या है ? कृपा करके मुझे बताइये।

यह सुनकर स्वयं प्रभावती आर्यिका ने कहा कि क्या तुम्हें तुम्हारे घर में रहने वाला कबूतर युगल याद नहीं ? याद करो, मैं तुम्हारे घर में रतिसेना नाम की कबूतरी थी। यह बात सुनकर सेठानी को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने पूछा कि रतिकर कबूतर कहाँ है ? उत्तर में प्रभावती ने कहा कि वह भी मरकर विद्याधरों का राजा हिरण्यवर्मा हुआ था, परन्तु अब राजा हिरण्यवर्मा भी मुनिदीक्षा धारण करके विहार करते हुए इसी नगरी में आये हैं। ऐसा सुनकर सेठानी ने मुनि के पास जाकर भक्ति पूर्वक मुनि को नमस्कार किया और तत्पश्चात् प्रभावती के उपदेश से सेठानी भी आर्यिका हो गई।

इधर भवदेव का जीव विद्युतचोर हुआ। उस विद्युतचोर ने सेठानी की दासी के मुँह से इन मुनिराज हिरण्यवर्मा और आर्यिका प्रभावती के पूर्वभवों का वृतान्त सुना, इसलिये दोनों को श्मशान में ध्यानस्थ जानकर उस विद्युतचोर ने उन्हें जलती चिता में फैंक दिया। उस समय वे दोनों अग्नि के तीव्र ताप परीषह से शुद्ध होकर समताभावों से मरे और अपने पुण्य प्रताप से स्वर्ग में ऊँची जाति के देव-देवी हुए। जब राजा को इस बात का पता लगा तो राजा ने विद्युतचोर को मार डालने की आज्ञा दी, उन दोनों देव-देवी ने अवधिज्ञान से राजा का

यह विचार जानकर राजा के पास आकर समझाया और उन्हें शान्त कर दिया।

कुछ समय व्यतीत होने पर एकबार वे दोनों देव फिर से वहाँ आये और उन्होंने महामुनि भीम को देखकर नमस्कार किया और उनसे धर्मोपदेश सुना। तत्पश्चात् देव ने कहा कि हे स्वामिन् ! आपके इस छोटी उम्र में दीक्षा लेने का कारण क्या है ? उसके उत्तर में मुनिराज ने कहा –

"मैं इस पुण्डरीकणी नगरी के एक दरिद्र कुल में जन्मा था। मेरा नाम भीम है। एक समय अवसर मिलने पर मैंने एक मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना। उस समय मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो गया, जिससे मुझे अपनी पूर्वभव की सब बातों का पता चल गया। .....मैं विचार करने लगा कि मैं अपने पहले भव में भवदेव नाम का वैश्य पुत्र था और उस भव में मैंने रतिवेगा और सुकान्त को जलाकर मारा था..... पश्चात् जब वे मरकर कबूतर-कबूतरी हुए तब मैंने बिलाव बनकर पूर्वभव के द्वेषवश उन्हें मारा था। तत्पश्चात् वे हिरण्यवर्मा और प्रभावती हुए तब मैं विद्युतचोर बना और जब वे दोनों मुनि-आर्यिका के वेश में थे, तब मैंने उन्हें जलती हुई चिता में जला दिया। इस महापाप के कारण महादुःखों का स्थान जो नरक, मैं वहाँ गया और मुझे वहाँ अनेक प्रकार – भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी मारन-काटन, छेदन-भेदन आदि के कष्ट सहन करने पड़े। नरक में से निकलकर मुझे संसार चक्र में जो चक्कर लगाने पड़े, उससे मेरा आत्मा इतना संक्लेशित हो गया कि मैं उसका वर्णन शब्दों में नहीं कर सकता। अतः उसी समय मैं विरक्त होकर दिगम्बर साधु हो गया।"

इस विचित्र कथा को सुनकर इन देवों को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उन्हें अवधिज्ञान द्वारा समस्त बातें स्पष्टरूप से ज्ञात हो गईं। "जिनको आपने पहले कितनी ही बार मारा है, वे दोनों हम ही हैं" – ऐसा कहकर उन्होंने भीम मुनि की वन्दना की और दोनों स्वर्ग में वापस चले गये।

यहाँ महामुनि भीम ने बारह भावनाओं का चिंतवन तथा कठिन तपश्चर्या करते हुए क्षपक श्रेणी आरोहण कर घाति कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और फिर अघाति कर्मों का नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया।

अहा ! देखो, भव-भव में बैर के परिणाम धारण करके स्त्री-पुरुष को मारा, कबूतर-कबूतरी को मारा और मुनि-आर्यिका को जिन्दा जला दिया – **ऐसे पापी भवदेव के जीव ने भी क्षणभर में संसार के दुःख से विरक्त होकर द्रव्यदृष्टि के बल से आत्मध्यान लगाकर उन मंदकषायी जयकुमार और सुलोचना के जीव के पूर्व ही मोक्ष प्राप्त कर लिया।** अहा ! वस्तु स्वरूप की अगाध महिमा का क्या कहना। अहा ! निजात्मा की साधना का ये ही तो चमत्कार है। भव-भव में अन्य जीवों को मारने वाला स्वयं उनके पूर्व मोक्ष चला गया। **यह सब निर्दोष त्रिकाली चैतन्य सामान्य स्वभाव के आश्रय का ही प्रताप है।**

✢ ✢ ✢

यहाँ सुलोचना अपने पति जयकुमार को पूर्वभव का उक्त वृतान्त सुनाकर याद दिलाती है कि हे नाथ ! उस समय हम दोनों महामुनि भीम की वन्दना करके वापस स्वर्ग चले गये थे और स्वर्ग से चयकर आप राजा सोमप्रभ के पुत्र कुमार जयदेव हुए और मैं राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना हुई हूँ। और यही कारण है कि कबूतरों के जोड़े को देखकर अपने को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। इसप्रकार अपने पूर्वभवों की कथा सुनकर वे दम्पत्ति और उनके परिवारजन अत्यन्त आश्चर्यकारी ऐसे वस्तुस्वरूप, वस्तु के परिणमन एवं जीव के परिणामों के वैचित्र्य को जानकर संसार से उदास वृत्ति वाले होकर गृहस्थ के योग्य धर्मकार्यों में संलग्न रहते हुए समय व्यतीत करते रहे।

एक दिन अनेक राजाओं द्वारा पूजित राजा जयकुमार संसार की क्षणभंगुरता से उदास हो, अनित्य संसार का त्यागकर आदिनाथ स्वामी के समवसरण में पहुँचे। वहाँ उन्होंने धर्म श्रवण करते हुए संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो दिगम्बर दीक्षा धारण करली तथा थोड़े ही दिनों में आदिनाथ स्वामी के बहत्तरवें गणधर बने और अन्त में घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञानी बन गये। सुलोचना भी आर्यिका बनकर स्वर्ग में गई और वहाँ से आकर मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करेगी। ●

अशोक-रोहिणी की कथा

(वासुपूज्य भगवान के गणधर अमृताश्रव की कथा)

इस देश के हस्तिनापुर नामक नगर में वीतशोक नाम का महागुणवान राजा रहता था। उसकी विद्युतप्रभा नाम की सुन्दर और गुणवान रानी थी। इन दोनों के अशोक नाम का गुणवान पुत्र था।

उस समय में चम्पा नाम की एक नगरी थी। उसके राजा का नाम मधवा था उसकी श्रीमती नाम की रानी थी। उनके आठ पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री का नाम रोहिणी था। रोहिणी गुणवान, रूपवती युवती थी। एक बार वह अष्टान्हिका पर्व में उपवास करके, उत्साह से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके, जिनधर्मी साधुओं को नमस्कार करके सभा भवन में बैठे हुए माता-पिता आदि के समीप आई। पुत्री को युवा हुई देखकर पिता विचारने लगा कि इस रूपवान कन्या को इसी के समान रूपवान किस वर को प्रदान करूँ?

राजा ने अपने मंत्री को बुलाया और कन्या के लिये वर खोजने के विषय में पूछा तो मंत्री ने कहा कि इस सुन्दर कन्या के योग्य वर शोधने के लिये स्वयंवर मण्डप का आयोजन करके कन्या की पसन्द के योग्य वर से इसका विवाह करना उचित होगा। यह बात राजा को रुचिकर प्रतीत हुई। अतः उन्होंने चम्पा नगरी में अपनी योग्य पुत्री रोहिणी के स्वयंवर मण्डप का आयोजन किया और देश-विदेश के राजकुमारों को पधारने हेतु आमन्त्रण भेजा। अनेक देशों के राजकुमार चम्पा नगरी आये। उनके लिये उचित आवास व खान-पान की व्यवस्था की गई और उनके लिये मणिमय सिंहासनों से सुसज्जित सभा मण्डप तैयार किया गया।

सभी राजकुमार सभा मण्डप में आकर अपने-अपने निर्धारित स्थान पर विराजमान हो गये। रोहिणी भी बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी दासियों सहित सभा मण्डप में आ पहुँची। उस समय रोहिणी का रूप साक्षात् इन्द्रानी तुल्य लग रहा था। अतः समस्त राजकुमार उसे उत्सुकता से टकटकी लगाकर देखने लगे। दासी एक-एक राजकुमार का

परिचय देती हुई आगे बढ़ती जाती थी। रोहिणी का मन किसी राजकुमार पर नहीं ठहरता था। आगे बढ़ते हुए दासी ने कहा – हे स्वामिनी ! यह वीतशोक राजा का पुत्र अशोक है। यह समस्त गुणों का सागर है। इसका रूप सहज ही कामदेव को पराजित करने वाला है, मानो किसी देव अथवा विद्याधर जैसा रूप है। रोहिणी ने कुमार अशोक के रूप-गुण देखकर तुरन्त ही कुमार अशोक को वरमाला पहिना दी।

रोहिणी के पिता ने कुमार अशोक के साथ उसका विवाह निश्चित कर दिया और कुमार अशोक ने श्री जिनेन्द्र भगवान की महामह पूजा करके मंगल मुहूर्त्त में राजकुमारी रोहिणी के साथ विवाह किया और कितने ही समय तक अपनी ससुराल में रह कर सुख भोगे।

पश्चात् अशोक-रोहिणी ने अपने निज नगर हस्तिनापुर में आकर माता-पिता आदि परिवारजनों को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया तथा अपने-अपने कर्मों को करने में जुट गये।

एक दिन पिता वीतशोक को उल्कापात देखकर वैराग्य भाव जागृत हुआ, उन्होंने पुत्र कुमार अशोक को राजगद्दी पर बैठाकर जिनदीक्षा ले ली और उग्र तप करके कर्मनाश कर मुक्तावस्था को प्राप्त किया। पिता के दीक्षित होने पर होनहार कुमार अशोक ने कुशलता पूर्वक राज्य का संचालन किया।

रोहिणी के सुन्दर आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं। उनमें से सबसे छोटे पुत्र का नाम लोकपाल था। एक बार अशोक-रोहिणी अपने समस्त पुत्र-पुत्रियों के साथ राजमहल की छत पर बैठे हुए मीठी-मीठी आनन्दकारी बातें कर रहे थे। इतने में रोहिणी ने नीचे गली में देखा कि अनेक स्त्रियाँ बालों को बिखेरकर घेरा बनाकर छाती कूटती हुई रुदन कर रही थीं, आक्रन्दन कर रही थीं। यह देखकर रोहिणी को आश्चर्य हुआ कि यह किस प्रकार की नाट्यकला है ? मुझे तो बहत्तर कलाओं का ज्ञान है, परन्तु उनमें तो मैंने ऐसी कोई कला नहीं देखी। अतः वह विस्मयता पूर्वक दासी से पूछती है

कि यह किस प्रकार का नाटक ? तब दासी ने रोहिणी का भोलापन देखकर कहा कि पुत्री ! यह नाटक नहीं, परन्तु कुछ दुःखी जीव दुःख और शोक मना रहे हैं। तब रोहिणी फिर पूछती है कि दुःख और शोक क्या वस्तु है? रोहिणी का ऐसा प्रश्न सुनकर गुस्से में आकर एक बुजुर्ग व गम्भीर दासी बोली कि हे सुन्दरी ! तुम्हें उन्माद हुआ है। पाण्डित्य और ऐश्वर्य ऐसा ही होता है। और क्या तुम्हें लोकातिशयी सौभाग्य है जिससे कि तुम दुःख और शोक को नहीं जानती और स्वर व भाषा को अलंकृत कर नाटक-नाटक बक रही हो। क्या तुम इस क्षण ही जन्मी हो?

दासी बसन्ततिलका की क्रोध पूर्ण बात सुनकर रोहिणी कहने लगी कि हे भद्रे ! तू मेरे ऊपर क्रोध न कर, मेरे लिये आज भी यह प्रसंग अदृष्ट और अश्रुत है – इस कारण मैंने तुझसे प्रश्न किया है, इसमें अहंकार की कोई बात नहीं है। तब दासी कहती है कि हे वत्स यह नाटक, प्रयोग अथवा संगीत स्वर नहीं है; परन्तु इष्ट बंधु की मृत्यु से रोने वाले को जो दुःख होता है, उसे शोक कहते हैं।

रोहिणी फिर से पूछती है कि हे भद्रे ! मैं रुदन का अर्थ भी नहीं जानती, अतः रुदन का क्या अर्थ है – यह बताओ ?

रोहिणी का यह प्रश्न पूरा होते ही राजा अशोक ने कहा कि 'शोक से जो रुदन होता है उसका अर्थ मैं तुझे बताता हूँ' – ऐसा कहकर उसने छोटे लोकपाल कुमार को रोहिणी के हाथ से खींचकर छत के ऊपर से नीचे डाल दिया, तब रोहिणी को बहुत ही दुःख और शोक हुआ। कुमार लोकपाल को तो देवियों ने आकर फूल की तरह झेल लिया और अभिषेक आदि से लोकपाल का सन्मान करके देवियाँ चली गईं।

एक समय हस्तिनापुर में रूपकुमम और स्वर्णकुमम नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों के पधारने पर वनपाल ने राजा को मुनियों के पधारने के समाचार दिये। इससे राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने परिवार सहित वन में जाकर भक्ति पूर्वक मुनिराज की वन्दना करके अवधिज्ञानी रूपकुमम

मुनि से विनय पूर्वक प्रश्न किया कि हे महाराज ! मेरे और मेरी रानी रोहिणी के पूर्वभव का वृतान्त बताने की कृपा करो।

+ + +

तब मुनिराज ने बताया कि इस भारत देश की हस्तिनापुर नगरी में सदियों पहले एक वसुपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसके भाई धनमित्र के पूतिगंधा नाम की एक कन्या थी। पूतिगंधा के शरीर से मरे हुए कोढ़ी कुत्ते के शरीर जैसी भीषण दुर्गन्ध निकलती थी उसकी भीषण दुर्गंध से आकाश भी दुर्गन्धमय हो जाता था।

उसी नगर में एक वसुमित्र नाम के धनवान सेठ के श्रीषेण नामक पुत्र था, वह सप्तव्यसनी महापापी था। एक बार उसको चोरी करते हुए कोतवाल ने पकड़ लिया और जब वह उसे मजबूत सांकलों से बांधकर नगर में घुमा रहा था। तब पूतिगंधा के पिता ने श्रीषेण से कहा कि यदि तू मेरी पुत्री के साथ विवाह करे तो मैं तुझे इस बन्धन से छुड़ाकर मुक्त करवा दूँ। मार के भय से दुःखी श्रीषेण ने कहा कि "मामा ! यदि तुम मुझे छुड़ाओगे तो मैं तुम्हारी पुत्री के साथ विवाह अवश्य करूँगा।"

पूतिगंधा के पिता ने राजा से प्रार्थना करके श्रीषेण को बन्धन मुक्त कराया और पूतिगंधा से विवाह कर दिया। परन्तु उसकी दुर्गन्ध के कारण वह एक रात्रि भी उसके साथ नहीं रह सका – इस कारण प्रातःकाल होते ही उसे छोड़कर चल दिया। इससे पूतिगंधा दीन-हीन होकर अपने पिता के घर में दिन व्यतीत करने लगी।

एक समय वहाँ पिहितास्रव नाम के चारण ऋद्धिधारक मुनिराज संघ सहित पधारे। उनके आने के समाचार मिलते ही राजा आदि सभी नगरवासी मुनिसंघ की वन्दना करने के लिये वन में गये। पूतिगंधा भी अपने माता-पिता के साथ मुनि वन्दना के लिये गई। पूतिगंधा ने मुनिराज की वन्दना करके उपदेश सुनने के पश्चात् विनय से प्रश्न किया कि मैंने अपने पूर्वभव में ऐसा कौन-सा निकृष्ट पाप किया है, जिसके कारण मैं पूतिगंधा होकर महान दुःख भोग रही हूँ।

मुनिराज महान् वैराग्य को उत्पन्न करने वाली पूतिगंधा के पूर्वभव की बात बताते हुए कहते हैं कि हे पुत्री ! मैं तुझे दुर्गन्धमय शरीर के मिलने का कारण बताता हूँ, तू ध्यान देकर सुन।

भरतक्षेत्र में सौराष्ट्र नाम के देश में गिरनार नाम का एक नगर था। उसके राजा का नाम भूपाल था और वह विशुद्ध सम्यग्दृष्टि था। उस राजा के राज्य में एक गंगदत्त नाम का सेठ था। उसकी पत्नी का नाम सिन्धुमति था। सिन्धुमति को अपने रूप-योवन आदि का बहुत गर्व था।

एकबार राजा के साथ वनक्रीड़ा को सपत्नीक वन में जा रहे गंगदत्त सेठ ने अनेक महिनों तक अनशन तप करके पारणा के लिये समाधिगुप्त मुनिराज को अपने घर की ओर आते देखकर अपनी पत्नी से कहा कि मुनिराज पधार रहे हैं, तुम उन्हें विधि पूर्वक आहार देने के बाद वन में आ जाना। पति के कहने से सिन्धुमति वापस तो लौट गई, परन्तु उसे मुनिराज के प्रति मन में बहुत ही क्रोध आ गया। वह मुनिराज का पड़गाहन करके अपने घर ले गई और कड़वी तुम्बी सहित विष भरा आहार देने लगी, उसकी दासी द्वारा बहुत रोके जाने पर भी उसने क्रोध से मुनिराज को वह आहार दे दिया। मुनिराज ने आहार लेकर हमेशा के लिये आहार का प्रत्याख्यान करके आराधनाओं का आराधन कर समाधिमरण पूर्वक देव पर्याय प्राप्त की।

राजा के वन से वापिस आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि गंगदत्त की पत्नी सिन्धुमति ने कड़वी तुम्बी खिलाकर मुनि की हत्या की है, तो क्रोधित होकर राजा ने सिन्धुमति का सिर मुंडवाकर और गधे पर बैठाकर उस दुराचारिणी को मारते-मारते समस्त नगरजनों को दिखाने के लिये नगर में घुमाया। तत्पश्चात् उसके उदम्बर कोढ़ निकला और सातवें दिन वह मरकर छठवें नरक में बाईस सागर की आयुष्य धारक नारकी हुई। तत्पश्चात् सिंहनी होकर पुनः नरक में गई और सातों नरकों में परिभ्रमण किया। वहाँ से निकलकर तिर्यंचगति में कुत्ती, सूअरी, सियालनी, चुहिया, हथिनी, गधी आदि अनेक पर्यायों को धारण कर तिर्यंचगति के दुःख भोगे। फिर वैश्या होकर, दुःखों से परिपूर्ण दुर्गन्ध शरीर वाली परिवारजनों से निन्दनीय तू पूतिगंधा हुई है।

मुनिराज के मुख से पूर्वभव की कथा सुनकर पूतिगंधा का मन संसार से अतिविरक्त हो गया और उसने मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना तथा इन दुःखों से छूटने का उपाय पूछा –

मुनिराज ने सभी को संसार के दुःखों से छूटने के उपायस्वरूप धर्मोपदेश दिया और पूर्व में हुए पूतिगंध कुमार की घटना सुनाई, जिसका सार इसप्रकार है –'जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में शकटपुर देश के सिंहपुर नगर में सिंहसेन राजा के पुत्र पूतिगंध कुमार के शरीर से तेरी तरह ही बहुत दुर्गन्ध निकलती थी।

एक समय विमलवाहन मुनिराज को केवलज्ञान प्रकट होने पर देवतागण आकाश मार्ग से केवलज्ञान कल्याणक का उत्सव मनाने जा रहे थे। उसी समय पूतिगंध कुमार राजभवन के शिखर पर बैठे थे। उन्होंने प्रभा से शोभित देवकुमारों को जाते देखा और देखते ही मूर्छित हो गये। जब चन्दनादि शीतोपचार करने से उनकी मूर्छा दूर हुई तो उन्हें तुरन्त ही जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वे अपने पिता के साथ केवली भगवान के दर्शन करने गये।

दोनों पिता-पुत्र केवली भगवान के भक्तिभाव से दर्शन-पूजनादि करके उपदेश सुनने बैठ गये। उपदेश पूर्ण होने पर सिंहसेन महाराज ने भक्तिपूर्वक विमलवाहन जिनराज से अपने मन की बात पूछी कि मेरा पुत्र किस कारण से पूतिगंध हुआ और मूर्छितोपरान्त सचेत होकर यहाँ आया। कृपा करके सम्पूर्ण वृतान्त कहकर मुझे कृतार्थ करो।

राजा के प्रश्न के उत्तर में जिनराज की दिव्यध्वनि में आया कि तेरे पुत्र ने पूर्वभव में मुनिराज की हत्या की होने से अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए तुम्हारे यहाँ पूतिगंध हुआ और आकाश में जाते देवकुमारों को देखकर इसे जातिस्मरण ज्ञान होने से नरक की वेदना का स्मरण होने पर भयभीत होकर मूर्छित हुआ।

सिंहसेन राजा ने विमलवाहन जिनराज से पूछा कि पूर्वभव में पूतिगंध ने किस कारण से मुनिराज की हत्या की थी ? उत्तर में जिनराज की दिव्यध्वनि में आया कि विंध्याचल पर्वत पर एक दिव्य अशोक वन है। उसमें दो मदोन्मत्त

हाथी रहते थे। एक समय वे दोनों हाथी उसी प्रदेश की विशाल नदी में गये और दोनों जल के लिए परस्पर लड़ पड़े। वे इतने जोर से लड़े कि लड़ते-लड़ते मर गये।

मरकर एक बिलाव हुआ और दूसरा चूहा। दूसरी बार एक भयंकर सर्प हुआ और दूसरा नेवला, पश्चात् बाज-बगुला होकर फिर वे दोनों कबूतर हुए।

– इसप्रकार वे दोनों जीव तिर्यंचगति में अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए कबूतर पर्याय से मरकर कनकपुर राज्य के सोमभूति पुरोहित के यहाँ पुत्र हुए। उनमें से एक का नाम सोमशर्मा और दूसरे का नाम सोमदत्त था। वे विद्याभ्यास करके विज्ञान में पारंगत हुए। पिता सोमभूति की मृत्यु होने पर छोटे भाई सोमदत्त को पुरोहित का पद मिला। बड़ा भाई सोमशर्मा था। उसने छोटे भाई सोमदत्त की स्त्री लक्ष्मीमति के साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर रखा था। यह बात सोमशर्मा की भोली-भाली पत्नी दीपा सोमदत्त को बारम्बार कहती थी कि तुम्हारी दुराचारिणी स्त्री के साथ मेरे पति का अनुचित सम्बन्ध है। यह जानकर सोमदत्त को अत्यन्त वैराग्य हुआ और उसने धर्मसेन मुनि के समीप जिनदीक्षा ले ली।

जब राजा सोमप्रभ को सोमदत्त के दीक्षा ले लेने के समाचार मिले तो उसने उसके बड़े भाई सोमशर्मा को पुरोहित का पद दे दिया।

इधर राजा सोमप्रभ ने शकटदेश के वसुपाल राजा पर मात्र एक हाथी की चाह पूरी न होने के कारण हाथी प्राप्ति के लिए उस पर चढ़ाई कर दी। संध्या के समय राजा की सेना ने वन में पड़ाव डाला। पुरोहित सोमशर्मा की नज़र ध्यानस्थ मुनिराज सोमदत्त (छोटे भाई) पर पड़ी। मुनिराज को देखते ही सोमशर्मा क्रोध में लाल-पीला हो गया और उसने सोमप्रभ राजा से कहा कि आप अपने से बलवान राजा पर चढ़ाई करने निकले हैं, तब इस नग्न मुनि के दर्शन से अपशकुन हुआ है, इस कारण इस मुनि को मारकर इसका खून दशों दिशाओं में अर्पण करके शान्ति विधान करना चाहिये।

पुरोहित के हिंसामय वचन सुनकर राजा सोमप्रभ ने कान बन्द कर लिए।

तब एक निमित्तज्ञ विश्वदेव ब्राह्मण ने राजा से कहा कि राजन् ! सोमशर्मा को शकुन-अपशकुन का पता नहीं चलता। यह मुनिराज तो समस्त प्राणियों का हित करने वाले हैं। इनके दर्शन से तो अपना इच्छित कार्य तुरन्त पूर्ण हो जाए – इनके दर्शन से तो अपने लिए शकुन हुए हैं। इस संदर्भ में उसने अनेक शास्त्र आधार और युक्तियाँ देकर बात की और कहा कि राजन् ! इन मुनिराज के दर्शनरूपी महा-शकुन तो यह बताते हैं कि – "आपको हाथी देने के लिये स्वयं राजा वसुपाल को यहाँ आना चाहिये ।"

प्रभात होते ही सचमुच वसुपाल राजा ने सोमप्रभ राजा को हाथी भेंट करके सन्मान किया और प्रसन्न होकर राजा ने वापिस अपने नगर की तरफ प्रस्थान कर दिया।

पुरोहित सोमशर्मा ने पूर्व-बैर के कारण ध्यानाविष्ट मुनिराज सोमदत्त की तलवार से हत्या कर दी। प्रातःकाल जब महाराज सोमप्रभ को ज्ञात हुआ कि सोमशर्मा ने मुनिराज की हत्या की है, इससे राजा ने सोमशर्मा से मुनिहिंसा के कारण पुरोहित पद छीन लिया और कठोर से कठोर दण्ड दिया। दुष्टबुद्धि सोमशर्मा को मुनि हिंसा के पाप से गलित कोढ़ निकल आया और वह सात दिन तक भयानक पीड़ा भोगते हुए मरकर तुरन्त ही सातवें नरक में जा गिरा।

वहाँ के 33 सागरपर्यंत महादुःख भोग कर नरक से निकला और एक हजार योजन का मच्छ हुआ, वहाँ भी अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करके मरकर छठवें नरक में जा गिरा, वहाँ बाईस सागर तक भयंकर दुःख भोगे, वहाँ से निकलकर भयानक सिंह हुआ। और वहाँ की आयु पूर्ण करके पाँचवे नरक में जा गिरा। वहाँ भी असहनीय दुःख भोगकर भयंकर काला सर्प हुआ। वहाँ से आयु पूर्ण करके चौथे नरक गया और वहाँ भी महादुःख भोगकर बाघ हुआ। वहाँ से मरकर तीसरे नरक का नारकी हुआ। वहाँ से निकलकर दुष्ट विकराल पक्षी हुआ और वहाँ से मरकर दूसरे नरक का नारकी हुआ। वहाँ भी दुःख भोगकर सफेद बगुला हुआ। वहाँ भी पाप करके पहले नरक गया। हे राजन् ! वहाँ एक सागर पर्यन्त दुःख भोगकर वहाँ से निकलकर वही तुम्हारे यहाँ पूतिगंध कुमार हुआ है।

इसप्रकार पूर्वभव के पापों की बात सुनकर पूतिगंध कुमार ने तत्त्वाभ्यास में अपना उपयोग लगाया और तत्त्व निर्णय व पाँच लब्धियों पूर्वक सम्यक्त्व प्राप्त करके श्रावक के व्रत धारण किये और उपवास आदि धर्म का पालन करते हुए उसे मात्र एक माह ही हुआ था कि अत्यन्त विरक्ति होने से उसने अपने विजय नामक पुत्र को गद्दी पर बैठाकर जिनदीक्षा ले ली। और चार प्रकार की आराधना पूर्वक सल्लेखना मरण प्राप्त कर प्राणत स्वर्ग में 22 सागर की स्थिति वाला ऋद्धिधारी देव हुआ। 22 सागर तक स्वर्ग में विपुल भोगों को भोगकर वहाँ से चयकर विदेहक्षेत्र में पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में विमलकीर्ति राजा के यहाँ अर्ककीर्ति नाम का पुत्र हुआ।

अर्ककीर्ति अत्यन्त रूपवान एवं लोगों के मन को हरने वाला था। अर्ककीर्ति का प्राणों से भी प्रिय मेघसेन नामक एक मित्र था। दोनों मित्र एक साथ ही विद्याभ्यास करके पारंगत हुए थे।

एक समय मथुरा में सुमंदिर नाम के सेठ पुत्र का विवाह सुशीला और सुमति नाम की दो कन्याओं के साथ हो रहा था। उन कन्याओं को राजकुमार अर्ककीर्ति ने देख लिया और उसके मित्र मेघसेन को संकेत करने पर मेघसेन उन दोनों कन्याओं को उठा लाया, परन्तु मेघसेन को उन कन्याओं को उठाते हुए ग्रामवासियों ने देख लिया, अतः गाँव के लोगों ने मेघसेन के पास से उन कन्याओं को तो छुड़ा लिया और पुण्डरीकिणी नगरी में आकर विमलकीर्ति राजा को यह सम्पूर्ण वृतान्त सुना दिया। राजा विमलकीर्ति ने क्रोधित होकर निष्पक्ष न्याय करते हुए अपने पुत्र राजकुमार अर्ककीर्ति व उसके मित्र मेघसेन को देश से निष्कासित कर दिया।

दोनों मित्र वहाँ से निकलकर वीतशोकपुर आये। वहाँ के राजा विमलवाहन की जयमति आदि आठ रूपवान, गुणवान कन्यायें चन्द्रभेद करने वाले को विवाही जानी थीं। इसके लिये अनेक राजकुमार आये थे, परन्तु किसी से भी चन्द्रभेद नहीं हो सका था। तत्पश्चात् अर्ककीर्ति ने आकर चन्द्र का भेदन कर दिया। इस कारण राजा ने प्रतिज्ञानुसार आठों राजकन्याओं

का विवाह अर्ककीर्ति के साथ कर दिया। तब कितने ही समय अर्ककीर्ति श्वसुर के यहाँ रहा।

एक बार अर्ककीर्ति ने उपवास करके जिनमंदिर में भगवान की पूजा की और रात्रि समय मन्दिर में ही सो गया। वहाँ सिमलेखा नाम की एक विद्याधरी आई ओर निद्राधीन कुमार को लेकर विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर जिनमंदिर में छोड़ गई। जब अर्ककीर्ति जागृत हुआ तब 'स्वयं को विजयार्द्ध के जिनमंदिर में' जानकर वह वहाँ के मंदिर में दर्शन करने चला गया। उसके पुण्य के प्रभाव से वहाँ के वज्रमय कपाट खुल गये। उसको पुण्यवन्त जानकर वहाँ के राजसेवक उसे राजा के पास ले गये। राजा ने उसका स्वागत किया और अपनी वीतशोका नाम की प्रिय पुत्री के साथ उसका विवाह कर दिया और अपनी अन्य इकतीस कन्याओं का विवाह भी उसके साथ कर दिया। अर्ककीर्ति कुमार ने पाँच वर्ष वहाँ भी सुखपूर्वक व्यतीत किये।

एक दिन पिता की याद आने पर वह अपने देश के लिये निकला। रास्ते में अंजनगिरी नाम के नगर में पहुँचा। वहाँ पागल हुए हाथी को वश में करके अपने पराक्रम से वहाँ के राजा की आठ कन्याओं से विवाह किया और अपनी पुण्डरीकिणी नगरी में आ गया।

एक दिन कुमार अर्ककीर्ति ने नटनी का रूप धारण करके पिता की सभा में जाकर लोगों के मन में आश्चर्य उत्पन्न करने वाला नृत्य किया और तत्पश्चात् अपने पिता राजा विमलकीर्ति की गायों को घेर लिया। इस कारण राजा ने गायों को छुड़ाने के लिये उससे युद्ध किया। पिता-पुत्र आमने-सामने लड़ने लगे। परन्तु कुमार ने प्रथम ही अपना नामोल्लिखित बाण पिता को भेजा। उसे देखकर, पढ़कर पिता का हृदय आनन्द से भर गया और दोनों पिता-पुत्र एक-दूसरे से अत्यन्त स्नेह पूर्वक मिले, क्षेम-कुशल पूछा और आनन्द पूर्वक राजभवन में गये।

राजा विमलकीर्ति ने अपने पुत्र के आगमन की खुशी में इच्छानुसार दान दिया और अपने विजयी प्रिय पुत्र अर्ककीर्ति को राज्य लक्ष्मी सौंपकर, स्वयं श्रीधर मुनिराज के समीप जिनदीक्षा अंगीकार कर आत्मसाधना में लग

गये। अन्त में क्षपकश्रेणी मांडकर केवलज्ञान प्राप्त किया और अघातिया कर्मों का भी नाशकर निर्वाण पधारे।

कुमार अर्ककीर्ति क्रम-क्रम से चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त कर आनन्द के साम्राज्य में रहे। एक दिन संसार की क्षणभंगुरता का प्रसंग देख वैराग्यी हो, अपने पुत्र को राज्य भार सोंप जिनदीक्षा लेकर उग्र तपश्चर्या पूर्वक आत्म साधना करने लगे, अन्त समय सल्लेखना पूर्वक शरीर छोड़कर बाईस सागर की स्थिति वाले अच्युत स्वर्ग में देव हुए।

पूतिगंधा ने भी श्रावकों के व्रतों का पालन कर मंदकषाय पूर्वक समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में पन्द्रह पल्योपम स्थिति वाली पूर्व के अर्ककीर्ति कुमार, जो देव हुए थे, उनकी महादेवी हुई। फिर वहाँ से चयकर देव का जीव तो अशोककुमार के रूप में जन्म हुआ और पहले भव की पूतिगंधा का जीव स्वर्ग में से चयकर चम्पा नगरी के मघवा राजा की रोहिणी नाम की पुत्री हुई है, जो तुम्हारे पास ही बैठी है।

✦ ✦ ✦

राजा अशोक मुनिराज द्वारा अपने भवान्तरों को सुनकर अपने शुभाशुभ परिणामों व उनके फलों को जानकर संसार से उदास होकर भी दीक्षा न ले सके और रानी रोहिणी भी पूर्वभवों को सुनकर अन्तर में उदास हो गई, पर राजा अशोक से अतिराग होने के कारण दीक्षा लेने का भाव होने पर भी दीक्षा न ले सकी। अत: वे दोनों मुनिराज को नमस्कार करके तब तो लौटकर हस्तिनापुर आ गये; परन्तु एक दिन जब राज-रानी सिंहासन पर बैठे थे, तब रानी रोहिणी ने अशोक के कान के पास चमकता हुआ सफेद बाल देखा और वह बाल तोड़कर अशोक के हाथ में दे दिया। सफेद बाल देखकर अशोक को एकदम वैराग्य जागृत हो गया और वह संसार, शरीर भोगों की निन्दा करने लगा।

उसी समय वनपाल ने आकर राजा से कहा कि हे राजन् ! भगवान वासूपूज्य प्रभु समवसरण सहित अपने उद्यान में पधारे हैं। राजा ने यह सुखद समाचार सुनकर सिंहासन से उतरकर भगवान की दिशा में नमस्कार किया,

वनपाल को इनाम दिया। सम्पूर्ण नगर में आनन्दभैरी बजाकर भगवान के पधारने की सूचना दी।

राजा अशोक सम्पूर्ण राज्य लक्ष्मी लोकपाल कुमार को देकर वासुपूज्य भगवान के समवसरण में पहुँचे। वहाँ भगवान की तीन प्रदक्षिणा करके भक्ति पूर्वक नमस्कार करके जिनदीक्षा अंगीकार की और वासूपूज्य भगवान के अम्रतास्रव नाम के गणधर हुए और उग्र आत्मसाधना करके अन्त में समस्त कर्मों का अभाव करके निर्वाणधाम – सिद्धालय पधारे।

रोहिणी ने भी समस्त परिग्रह छोड़कर भगवान को नमस्कार करके सुमति आर्यिका से दीक्षा ग्रहण की और कठोर तपश्चर्या करके अन्त में सल्लेखना पूर्वक शरीर छोड़ा तथा अच्युत स्वर्ग में देव पर्याय धारण की। आगामी भवों में मनुष्य पर्याय धारण कर जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर मोक्ष प्राप्त करेगी।

इसप्रकार घोर पाप करने वाले जीव भी जिनधर्म की शरण पूर्वक अपने आत्मा की शरण लेने पर शाश्वतसुख – मोक्षलक्ष्मी को वरते हैं, कारण कि घोर विकारभाव भी आत्मा के ऊपर-ऊपर तैरते हैं, वे आत्मस्वभाव में कभी भी प्रवेश नहीं करते। पर्याय में ही रहते हैं और पर्याय स्वयं क्षणवर्ती है। अत: यदि यह जीव अपने स्वभाव पर दृष्टि करे तो पर्याय के दु:ख स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं; क्योंकि वे स्वप्न के समान अत्यन्त क्षणभंगुर हैं। नट के स्वांगों की तरह क्षणिक स्वांगरूप होने से अगले ही समय बदल जाते हैं। आत्मा की शक्ति सामर्थ्य तो सदा शुद्ध ही है। उस शुद्ध परमेश्वर शक्ति का विश्वास करने पर, स्वानुभूति करने पर आत्मा पर्याय में साक्षात् परमेश्वर हो जाता है। ऐसा अद्‌भुत आश्चर्यकारी आत्मा का स्वरूप है।

कुमार अशोक की तरह हमें भी ऐसे अपने अद्भुत आत्मस्वरूप को पहिचान कर उसमें अपनापन स्थापित कर शाश्वतसुख को प्राप्त करना चाहिए। ●

जो बाहर से मर जाए उसके लिए यह धर्म है।

काँच के लोभी को मिला रत्नों का खजाना

राजगृह नगर का राजा सुबल अपनी अंगूठी में रत्नजड़ित स्वर्ण की बहुमूल्य मुद्रिका पहने हुए था। स्नान करने से पूर्व जब वह अपने शरीर पर तैलमर्दन कराने को तैयार हुआ तो उसने नग खराब हो जाने के भय से अपनी मुद्रिका उतार कर अपने राजपुरोहित सूर्यमित्र को सम्हला दी।

सूर्यमित्र अपनी अंगुली में मुद्रिका पहन कर अपने घर चला गया। वह स्नान आदि कार्य करके वापस राजसभा में आने को तैयार हुआ तो अपनी अंगुली में मुद्रिका न देख बहुत चिंतित हुआ। अतः परमबोध नामक निमित्तज्ञानी से मुद्रिका कहाँ मिलेगी अथवा नहीं मिलेगी – ऐसा पूछा।

'अवश्य लाभ होगा' इतना मात्र कहकर वह निमित्तज्ञानी वापस अपने घर चला गया।

पर सूर्यमित्र तो खेद-खिन्न अवस्था में महल में ही बैठा रहा।

उस समय उस नगर के बाहर उद्यान में पूज्यश्री सुधर्माचार्य महाराज चतुर्विध संघ सहित विराजमान थे। यह जानकर सूर्यमित्र को विचार आया कि ये जैन साधु भव्यजीवों के हितकारक, तीनलोक से पूज्य हैं चरण जिनके और बहुत ज्ञानी होने से अपने ज्ञाननेत्र से मुद्रिका को प्रत्यक्ष बता देंगे। इसलिये इनके पास गुप्तरूप से जाकर मुद्रिका के बारे में जानकारी प्राप्त की जाय।

जिसकी भली होनहार है और काललब्धि पक गई है – ऐसा वह सूर्यमित्र पुरोहित सूर्यास्त से पहले ही मुद्रिका के सम्बन्ध में पूछने हेतु शीघ्र ही वन में श्री सुधर्माचार्य मुनिराज के समीप जा पहुँचा। वे ज्ञान-वैराग्य, ऋद्धि आदि अनेक गुणों के आगार (घर) हैं, शरीरादिक से निर्मोही, मोक्ष साधन में लवलीन ऐसे योगीश्वर को देख कर वह राजपुरोहित प्रश्न पूछने में कुछ सकुचाया, लेकिन अपनी कार्यसिद्धि के लिए आतुर हो वह उनके चारों ओर घूमने लगा। कुछ समय घूमने के बाद उसे ऐसा भाव आया – ये तो दिगम्बर साधु हैं अतः सूर्यास्त होने के बाद तो बोलेंगे नहीं, इसलिये अब मुझे अपना

संकोच छोड़कर पूछ लेना चाहिए। – ऐसा विचार कर पूछने के विचार से सूर्यमित्र पुरोहित हाथ जोड़कर मुनिराज के समीप ही बैठ गया।

अवधिज्ञान के धारी परमोपकारी योगीश्वर उसे अत्यन्त निकटभव्य जान उस पर अपने अमृतमयी वचनों की वर्षा करने लगे –'हे सूर्यमित्र ! राजा की रमणीक मुद्रिका तुम्हारे हाथ से गिर जाने के कारण तुम चिन्ताग्रस्त हो और अपनी चिन्ता निवारण हेतु मेरे पास आये हो।'

सूर्यमित्र पुरोहित अपने द्वारा कुछ भी बताये बिना ही मुनिराज के मुख से अपने मन की बात सुनकर आश्चर्यचकित हुआ और श्रद्धावंत हो मुनिराज को नमस्कार कर पूछने लगा –

'हे प्रभु ! वह मुद्रिका कहाँ पड़ी है वह स्थान बताने की कृपा कीजिये।'

देखो उपादान की योग्यता के अनुकूल स्वतः निमित्त का मिलना। तीन ज्ञानरूपी नेत्रधारी योगीश्वर ने जवाब दिया कि 'हे विप्रवर ! तुम्हारे महल के पीछे बगीचेवाले तालाब पर जाकर जब तुम सूर्य को जल चढ़ा रहे थे, तब तुम्हारी अंगुली से मुद्रिका निकल कर सरोवर के कमल की एक पंखुडी पर गिर गई है। वह अदृश्य होने से अभी भी वहाँ पड़ी हुई है, इसलिये तुम मुद्रिका की चिन्ता छोड़ो और मेरे वचनों पर विश्वास रखो।'

पुरोहित यह सुनते ही तालाब के पास जाकर देखता है तो वास्तव में मुद्रिका वहाँ ही पड़ी थी। उसने साधु महाराज के उपकार की कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा – हे गुरुवर ! आप ही इस लोक में महान हो, आप ही धन्य हो, आपको बारम्बार नमन हो। वहाँ से उठकर वह शीघ्र ही राजा के पास गया और मुद्रिका राजा को सौंपकर बड़ा ही विस्मय को प्राप्त हुआ।

अब पुरोहित को वह विद्या प्राप्त करने का भाव जागा, जिससे मुनिराज कुछ भी कहे और देखे बिना ही सर्व वृतान्त जान गये थे। उसने विचारा कि ये मुनिराज तो सर्व के प्रत्यक्ष ज्ञाता और ज्ञानियों में भी श्रेष्ठ महाज्ञानी हैं। मुझे भी इनकी सेवा-आराधना करके इनसे यह विद्या प्राप्त कर लेनी चाहिये, जिससे सत्पुरुषों में, विद्वानों में मेरी महान प्रसिद्धि होगी, प्रतिष्ठा

बढ़ेगी और महान ऐश्वर्य और उत्तम पद प्राप्त होगा। इसप्रकार विचार कर महालोभी सूर्यमित्र गुप्त रूप से वह विद्या -- ज्ञान सीखने हेतु श्री सुधर्माचार्य गुरुवर के पास गया।

उसने योगीजन व अन्य मुनिराजों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और प्रार्थना की – "हे भगवन् ! हे कृपानाथ ! प्रत्यक्ष अर्थप्रकाशिनी अतिदुर्लभ उस विद्या का दान मुझे दीजिये।"

तब हितेच्छु अवधिज्ञानी श्री सुधर्माचार्य गुरुवर ने कहा –

'हे भद्र! यह प्रत्यक्ष अर्थप्रकाशिनी परम विद्या निर्ग्रन्थ ज्ञानी मुनियों के अलावा अन्य किसी को भी प्रगट नहीं होती, यदि तुम भी वास्तव में इस विद्या के अर्थी हो, तो तुम्हें भी मेरे समान निर्ग्रंथ बनना होगा।'

विद्वान सूर्यमित्र ने आचार्यदेव के वचन सुनकर अपने घर जाकर परिवारजनों को एकत्रित कर उनके सामने अपना भाव रखा और कहा – "हे बन्धुगण ! श्री सुधर्माचार्य योगीराज के पास प्रत्यक्ष अर्थप्रकाशिनी, चमत्कारी महाविद्या है। वह निर्ग्रंथ वेश बिना सिद्ध नहीं होती, इसलिये उसकी प्राप्ति हेतु मैं निर्गंथ भेष धारण कर उस विद्या को लेकर शीघ्र ही वापस आ जाऊँगा, आप लोग मेरे वियोग में शोक नहीं करना।"

तब उसके बान्धव जनों ने कहा हे सूर्यमित्र ! विद्या के लोभ से जो तुमने यह विचार किया है वह तो ठीक है, परन्तु कार्यसिद्धि होते ही तुरन्त वापस आ जाना, वहाँ अटकना मत।

आचार्यश्री तो यह सब जानते ही थे, इसलिये ही उन्होंने पहले से यह नहीं कहा – "पवित्र रत्नत्रय की विशेषता से ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं। गृहीत मिथ्यात्व को छुड़ाकर शनैः शनैः मार्ग पर लाने के उद्देश्य से उन्होंने मात्र इतना ही कहा कि निर्ग्रंथ दीक्षा ले लो।"

प्रश्न – क्या इसे सुधर्माचार्य का छल नहीं कहा जाएगा ?

उत्तर – नहीं। इसे छल नहीं समझना चाहिए, यह तो पात्रतानुसार उपदेश की ही श्रेणी में आएगा।

भावी घटनाओं के ज्ञाता उन मुनिराज ने पहले तो उस ब्राह्मण से बाह्य परिग्रह के त्यागपूर्वक स्वर्ग-मोक्ष की दाता 28 मूलगुण स्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की। दीक्षा तो ब्राह्मण ने उस विद्या के लोभ से ली थी, आत्म-कल्याण के लिये नहीं; अत: नवदीक्षित ब्राह्मण दीक्षा लेते ही गुरुवर से प्रार्थना करने लगा – "हे गुरुवर ! अब मुझे शीघ्र वह विद्या दे दीजिये।"

तब मुनिवर ने कहा – "हे विद्वान् ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के बिना मात्र क्रियाकलाप के पाठ से वह विद्या सिद्ध नहीं होती।" तब नवदीक्षित मुनि सूर्यमित्र ने अपनी बुद्धि के सर्व उद्यम पूर्वक चारों अनुयोगों के अभ्यास – अध्ययन में लगना प्रारम्भ किया। त्रेसठ शलाका पुरुषों के पूर्वभव आदिक, सुखसामग्री, आयु, वैभव आदि सूचक एवं पुण्य-पाप का फल दिखाने वाले सिद्धान्तों के कारणभूत ऐसे प्रथमानुयोग को सीखा। लोक-अलोक का विभाग उसका संस्थान, नरकों के दु:ख, स्वर्गों के सुख, संसार स्थिति का दीपक – ऐसे करुणानुयोग को भी श्रीगुरु के श्रीमुख से सीखा। मुनियों एवं गृहस्थों का आचरण – महाव्रत, अणुव्रत तथा शीलव्रतों का स्वरूप एवं उनका फल दर्शाने वाले चरणानुयोग का ज्ञान किया।

इसीप्रकार सच्चे-झूठे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप बतानेवाले तथा वस्तु के स्वरूप को बताने वाले शास्त्रों के माध्यम से छह द्रव्य, सात तत्त्व, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ, पांच मिथ्यात्व, सत्य-असत्य मतों की परीक्षा, प्रमाण-नय आदि का सम्यग्ज्ञान किया। समस्त पदार्थों के संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित सत्य लक्षण जाने और जैनदर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का स्वरूप जाना। ये सब ज्ञान उन्होंने द्रव्यानुयोग से सीखा।

इस तरह सूर्यमित्र मुनिराज द्रव्यानुयोग के यथार्थ अभ्यास द्वारा उत्तम सम्यक्त्व प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि बन गये। हेय-उपादेय का सत्य ज्ञान हो जाने के कारण धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ, जैनधर्म-अन्यधर्म का भी यथार्थ भेद अपने निर्मल ज्ञान से अच्छी तरह जान गये।

अहो ! दृष्टि का कमाल, जहाँ श्रद्धा ने पलटा खाया, वहाँ उसके अविनाभावी सभी गुणों की दिशा बदल गई। सम्यक् श्रद्धा के साथ जागृत होनेवाला विवेक भी स्व-पर का यथार्थ ज्ञाता हो गया और चारित्र में भी स्वरूप-रमणता का अंकुर फूट पड़ा। काँच के लोभी को रत्नों का निधान मिल गया।

श्री सूर्यमित्र मुनिराज को जिनेन्द्र देव एवं उनके द्वारा प्ररूपित जैनधर्म की सत्यता का बोध हो गया। अब उन्हें जैनधर्म की कोई अपूर्व महिमा आने लगी। वे विचार करते हैं– "सच्चे सुख का कारण होने से यही धर्म महान है, स्वर्ग-मोक्ष का कारण है। अन्य स्वार्थी लोगों द्वारा कथित सभी धर्म झूँठे हैं, अत: वे सभी मुझे अब विषतुल्य भासित होते हैं। वे मत नरकादि गतियों के दाता हैं। जैनधर्म में जीवादि समस्त पदार्थ सारगर्भित होने से वे ही सत्य एवं महान हैं। धर्म की उत्पत्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन के लिये सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र ही निमित्तभूत होते हैं। मैंने कुमार्ग-गामियों द्वारा कहे गये खोटे और अशुभ कुतत्त्वों को सीखकर अपने जीवन का इतना समय व्यर्थ ही गमाया।"

"मति-श्रुत ये दो ही ऐसे परोक्षज्ञान हैं, जिनके द्वारा केवलज्ञान समान सम्पूर्ण चराचर पदार्थों का ज्ञान हो सकता है।" अवधिज्ञान तो जगत के रूपी पदार्थों को उनके सम्बन्ध से भवान्तरों को प्रत्यक्ष देखता है। उसके देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ऐसे तीन भेद हैं। यह अवधिज्ञान चारों गतियों में हो सकता है। रूपी एवं सूक्ष्म पदार्थों को प्रत्यक्ष देखनेवाला मन:पर्ययज्ञान है, जो तप की विशिष्टता से किन्हीं-किन्हीं योगियों को ही प्रगट होता है। और केवलज्ञान, घातिकर्मों-के नाश से आत्मा में उत्पन्न होनेवाला, तीन जगत को देखने-जाननेवाला प्रत्यक्षज्ञान है। ये पांच प्रकार के ज्ञान जिनमें जगत के समस्त पदार्थ यथायोग्य स्पष्ट झलकते हैं, इनको कोई भी विद्वान किसी को दे नहीं सकता। ये ज्ञान तो आत्मसन्मुख पुरुषार्थ द्वारा तथा ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मों के क्षयोपशम-क्षय द्वारा योगियों को स्वत: उत्पन्न होते हैं।

मैंने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया, जो अवधिज्ञान के लोभ से ही

सही, संयम धारण कर लिया। जैसे कन्दमूल को खोजते-खोजते निधि का लाभ हो जाय, वैसे ख्याति, लाभ, पूजा के लोभ से मुझे यह जैनेश्वरी दीक्षा का लाभ मिल गया। 'परमोपकारी, जीवमात्र के हितवांछक, ज्ञान की आराधनारूप भला उपाय जानकर श्री सुधर्माचार्य गुरुदेव ने मुझे भगवती जिनदीक्षा दी, जो समस्त जगत की हितकारिणी है। इस दीक्षा से मैं कृतकृत्य हो मोक्षमार्गी बन गया।'

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकतारूप जो बोध, उसे मैंने महान भाग्य से जिनशासन में पाया। अनन्तगुणों के सिंधु, भुक्ति, मुक्तिदायक निर्दोष अरहन्तदेव, अपार एवं दुस्तर संसार समुद्र से भव्यजीवों को तारने वाले ऐसे निर्ग्रंथ गुरु मैंने महान पुण्योदय से पाये हैं। ये निर्ग्रंथ गुरु धर्मबुद्धि के धारक हैं। मैं इस संसार में कुमार्गदाता, संक्लेशमय, मिथ्यामार्ग – संध्या तर्पणादि कार्य करके व्यर्थ ही खेदखिन्न हुआ। मैं मिथ्यादृष्टि जीवों एवं जिनधर्म से पराङ्मुख देवों द्वारा ठगा गया। महापुण्योदय से अतिदुर्लभ जिनशासन को पाकर आज मैं धन्य हो गया। आज ही मैंने मोक्षमार्ग में गमन किया।

जैसे – ज्योतिषी देवों में सूर्य श्रेष्ठ है, धातुओं में पारा, पाषाण में सुवर्ण पाषाण, मणियों में चिन्तामणि, वृक्षों में कल्पवृक्ष, स्त्री-पुरुषों में शीलवान स्त्री-पुरुष, धनवानों में दातार, तपस्वियों में जितेन्द्रिय पुरुष और पण्डितों में ज्ञानी श्रेष्ठ हैं। वैसे ही समस्त धर्मों में जिनेन्द्र देव द्वारा भाषित दया एवं वीतरागमयी धर्म ही श्रेष्ठ है। समस्त मार्गों में जिनेन्द्रदेव का निर्ग्रंथ वेशरूप मोक्षमार्ग ही श्रेष्ठ है। जैसे – गाय के सींग से दूध, सर्प के मुख से अमृत, कुकर्म से यश, मान से महन्तपना कभी भी प्राप्त नहीं होते, वैसे ही कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु, कुधर्म और कुमार्ग सेवन से श्रेय अर्थात कल्याण, शुभ अर्थात् पुण्यकर्म और शिव अर्थात् मोक्ष कदापि प्राप्त नहीं होता।''

शाश्वत सुखदाता, जिनधर्म, जिनगुरु, सुशास्त्र का समागम होने पर आसन्न भव्य सूर्यमित्र मुनिराज का हृदय आनन्द की हिलोरें लेने लगता है। वे सच्चे धर्म की प्राप्ति से आर्विभूत हो पुनः पुनः उसकी महिमा करते हुए

कहते हैं– इनकी जितनी महिमा अन्दर में आती है, उसे व्यक्त करने के लिए शब्द भी कम पड़ते हैं। तीन लोक की सम्पदा भी जिसके सामने सड़े हुए तृण के समान भासित होती है। – ऐसा महा महिमावंत अपना चैतन्य प्रभु है। सादि-अनन्त पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द में केली करने वाले सिद्धप्रभु, नित्यबोधिनी जिनवाणी माँ और चैतन्यामृत में सराबोर, सिद्ध सादृश्य, झपट के (शीघ्र ही) केवलज्ञान लेने की तैयारी वाले गुरुवर धन्य हैं, धन्य हैं; धन्य हैं वह धन्य हैं, वह साध्य और वे साधक धन्य हैं। इनकी जितनी महिमा की जावे वह कम ही है। ऐसे ज्ञान-वैराग्य वर्धक विचारों से पूज्य सूर्यमित्र मुनिराज का ज्ञान-वैराग्य और अधिक पुष्ट हो गया।

हस्तरेखा समान हेय, ज्ञेय एवं उपादेय वस्तुओं के सम्यग्ज्ञान के प्रभाव से, तथा द्वादश प्रकार के संयम को पालने में तत्पर एवं जिनशासन में कहे गये व्रतों को निर्दोष पालने में और तपों को तपने में सतत प्रयत्न परायण ऐसे श्री सूर्यमित्र मुनिराज, इन्द्र, नरेन्द्र और नागेन्द्रों से वंदनीय हो गये। सम्यग्ज्ञानादि अनेक गुणों की वृद्धि से तीन लोक में जिनकी कीर्ति विस्तीर्ण हो गई है, और जो रत्नत्रय में परमोत्कृष्ट हो गये हैं ऐसे श्री सूर्यमित्र तपोधन स्वरूप विश्रांतिरूप तप में संलग्न हो गये।

इसलिए हे भव्यजीवो ! अपने हित के लिये आदरपूर्वक सकल शास्त्रों का अध्ययन कर सम्यग्ज्ञान का लाभ लेना चाहिए और शिवसुख दायक सम्यक्चारित्र से अपने जीवन को सजा लेना चाहिए; क्योंकि ज्ञानी पुरुष ही ज्ञान का आश्रय लेते हैं और ज्ञान में ही (आत्मा में ही) ज्ञान के प्रतिष्ठित होने से शिवरमणी के मुखारविंद (सिद्धदशा) का अवलोकन करते हैं। तीनलोक में ज्ञाननेत्र के समान और कोई मार्गदृष्टा नहीं है। कहा भी है –

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म, जरा मृत रोग निवारण।।

ज्ञान ही समस्त पदार्थों का ज्ञायक, और कर्मों का नाशक है एवं मोक्ष प्रदाता भी ज्ञान ही है। अत: मैंने भी निरन्तर ज्ञान में मन लगाया है, क्योंकि इस ज्ञानस्वरूप निज आत्मा के आश्रय से ही ज्ञानी अर्थात् सुखी हुआ जा सकता है। ○

देखो स्वरूप-आराधना का फल
(डाकू भी सिद्ध हो गया)

एक समय मगध राज्य की राजधानी राजगृही में प्रजापाल राजा राज्य करता था। उसके प्रियधर्मा नाम की शीलवती स्त्री थी और प्रियमित्र और प्रियधर्म नाम के दो पुत्र थे। कितने ही समय पश्चात् दोनों भाईयों ने वैराग्य प्राप्त करके जिनदीक्षा अंगीकार कर ली और घोर तपश्चर्या कर समाधिमरण पूर्वक अच्युत स्वर्ग में देव हुए। स्वर्ग में जाकर उनने प्रतिज्ञा की कि अपने में से जो पहले मनुष्य गति में जन्मेगा, उसे दूसरा देव सम्बोधन करके मोक्ष प्रदायनी जिनदीक्षा ग्रहण करायेगा।

प्रियमित्र स्वर्ग से आकर उज्जैनी नगरी के राजा नागधर्म और उनकी स्त्री नागदत्ता के यहाँ नागदत्त पुत्र के रूप में पहले जन्मा। नागदत्त को सर्पों के साथ क्रीड़ा करने का शोक था। जिससे अन्य लोग आश्चर्य चकित होते थे।

एक दिन स्वर्ग में रहने वाले (प्रियधर्म के जीव को) देव को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ। स्वर्ग का देव मदारी का वेष धारण करके दो भयंकर सर्पों को लेकर उज्जैनी नगरी में आया और नगर में सर्पों का खेल दिखाने लगा। कुमार नागदत्त को समाचार मिला कि कोई मदारी दो भयंकर जहरीले सर्प लेकर नगरी में आया है। कुमार ने तुरन्त मदारी को राजदरबार में बुलाया। गर्व में आकर कुमार नागदत्त ने मदारी से कहा कि तेरे जहरीले सर्पों को बता, मैं उनके साथ क्रीड़ा करना चाहता हूँ। देखूँ तो सही कि वे कैसे जहरीले हैं?

कुमार की अभिमानपूर्ण बात सुनकर मदारी के वेश में आया हुआ उसका देव मित्र कहता है कि "मैं राजकुमार के साथ ऐसी मजाक नहीं कर सकता कि जिसमें प्राण जाने का भय हो। कुमार! मान लो कि नाग आपको काट ले और आपकी मृत्यु हो जाए तो राजा मुझे तो प्राणदण्ड ही देंगे न।

कुमार ने कहा कि नहीं-नहीं। मैं तुम्हें राजा से अभयदान दिलाता हूँ।

ऐसा कहकर कुमार मदारी को राजा के पास ले गया और राजा ने कुमार के कहे अनुसार मदारी को अभयदान दे दिया। फिर मदारी ने एक साधारण सर्प निकाला। नागदत्त कुमार ने उससे क्रीड़ा कर उसे तुरन्त हरा दिया। कुमार कहता है कि तेरे पास कोई इससे भी जहरीला दूसरा नाग हो तो उसे भी अजमा ले। मदारी कहता है कि मेरे पास दूसरा ऐसा भयंकर नाग है कि उसकी फुंकार से ही लोगों को चक्कर आने लगेंगे।

कुमार कहता है कि तेरे पास कैसा भी भयंकर जहरीला नाग हो उसे निकाल, मेरे पास ऐसी जड़ी-बूटी है कि भयंकर नाग का जहर भी नहीं चढ़ सकता; अतः तू निर्भय होकर अपने नाग को बाहर निकाल।

मदारी ने भयंकर नाग को बाहर निकाला। वहाँ उसकी फुंकार से ही लोगों को चक्कर आने लगे। जब नागदत्त उसके साथ क्रीड़ा करने गया, तब नाग ने उसे तत्काल काट (डस) लिया और कुमार को तुरन्त जहर चढ़ गया, जिससे लोगों में हाहाकार मच गया और मंत्र-तंत्रवादियों को बुलाया गया; परन्तु कोई भी जहर उतारने में सफल नहीं हुआ। राजा घबराकर मदारी से कहता है कि भाई ! इस सांप के जहर से बचने का कोई उपाय तुम्हारे पास ही हो तो मेरे पुत्र को बचालो।

मदारी कहता है कि यह बच तो जायेगा, लेकिन आपके पास नहीं रहेगा, होश में आते ही मोक्षप्रदायिनी जिनदीक्षा धारण कर लेगा। राजा ने कहा – भले मोक्षप्रदायिनी जिनदीक्षा धारण कर ले, पर कुमार बच जाये; मैं इसे जिनदीक्षा लेने में बाधक नहीं बनूँगा, अब तुम इसका जहर शीघ्र उतार दो। मदारी मंत्र पढ़कर जहर उतार देता है और कुमार जागृत होकर मदारी से कहता है कि मैंने इतना जहरीला सर्प आजतक नहीं देखा, तुम इसे कहाँ से लाये हो और तुमने इसका जहर उतारने का मंत्र कहाँ से सीखा है, मुझे सब बातें विस्तार से बताओ। मैं भी ऐसे जहरीले सर्प का जहर उतारने वाला मंत्र सीखना चाहूँगा।

तब मदारी अपना देव का रूप धारण करके स्वर्ग में दोनों मित्रों के बीच हुई प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाता है।

जिसे सुनकर कुमार नागदत्त अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने देवमित्र का उपकार मानता है और स्वयं यमधर मुनिराज के समीप जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर कुमार नागदत्त से मुनि नागदत्त बन जाते हैं। कठिन तपस्या करने हेतु अपने दीक्षा गुरु से आज्ञा लेकर जिनकल्पी एकलबिहारी मुनि होकर तपश्चर्या करने लगते हैं।

एक दिन यात्रा करते हुए रास्ते में भयंकर जंगल आया। जंगल में डाकुओं का विशाल अड्डा था। डाकुओं ने मुनि को देखा तो उनको लगा कि यह मुनि किसी को बता देंगे तो हमारा गुप्तस्थान प्रसिद्ध हो जायेगा। ऐसा विचारकर वे डाकू मुनि नागदत्त को अपने सरदार के पास पकड़कर ले गये। डाकू सरदार ने मुनि को देखते ही कहा कि तुम मुनिराज को पकड़कर क्यों लाये हो? ये तो शत्रु-मित्र के प्रति समभावी होते हैं। शीघ्र ही इनको छोड़ दो। डाकुओं ने तुरन्त ही मुनिराज को छोड़ दिया।

मुनिराज नागदत्त को वहाँ से विहार करते हुए आगे जाने पर रास्ते में अनेक अंगरक्षकों सहित जाते हुए अपनी माता नागदत्ता मिलती है। वह कौशाम्बी के सेठ जिनदत्त के पुत्र धनपाल के साथ अपनी पुत्री को विवाहने के लिये जा रही थी। माता नागदत्ता मुनिराज के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न होती हुई मुनिराज को वन्दन करती है। मुनिराज से सुख-साता पूछते हुए यह भी पूछती है कि आगे का मार्ग भय रहित है या नहीं ? परन्तु मुनिराज उसका कोई भी उत्तर दिये बिना चले जाते हैं।

इधर नागदत्ता भी अपनी पुत्री को लेकर आगे चली जाती है। वहाँ डाकू आकर हमला करके नागदत्ता को लूट लेते हैं तथा माँ-बेटी को पकड़कर अपने सरदार के पास ले जाकर उससे कहते हैं कि उन मुनिराज को छोड़कर हम जंगल में इधर-उधर घूम रहे थे, वहाँ आकर इन माँ-बेटी ने मुनिराज के दर्शन किये और इस तरफ आगे बढ़ी तो भी मुनिराज ने यह नहीं कहा कि इस ओर डाकू बसते हैं। अत: हम उनका धनादि सब वैभव लूटकर तुम्हारे लिये यह राजकन्या पकड़कर लाये हैं।

यह सुनकर डाकुओं का सरदार कहता है कि –''देखो ! मैंने कहा था

न कि मुनि तो सर्व जीवों के प्रति समभावी होते हैं। मुनिराज के दर्शन करने वाली इस माता-पुत्री को भी उन्होंने यह नहीं कहा कि आगे डाकुओं का भय है। अहो ! प्रचुर स्वसंवेदन में झूलते हुए वीतरागी संत को डाकू हो या मित्र सबके प्रति समभाव वर्तता है।'' कहा भी है कि –

अरि-मित्र, महल-मसान, काँच-कंचन, निन्दन-थुति करन।
अर्घावतारन-असिप्रहारन में सदा समता धरन ।।

माता नागदत्ता बहुत क्रोधित होती है कि ''अरे ! मेरे पुत्र से मैंने दर्शन करके पूछा कि आगे मार्ग भयरहित है या नहीं ? परन्तु मुझसे बात भी नहीं की और हमको मौत के मुँह में जाने दिया। धिक्कार है ऐसे निष्ठुर – निर्दयी पुत्र को'' अरे, मैंने ऐसे निष्ठुर – निर्दयी पुत्र को जन्म दिया। इसकी अपेक्षा तो मुझे पुत्र ही नहीं होता तो ठीक था..... इत्यादि कल्पनाएँ करके आत्मघात हेतु वह अपने पेट में छुरी मारने को ज्यों ही तैयार होती है, त्यों ही सरदार गद्गद् होकर माता नागदत्ता के पैरों में पड़कर क्षमा माँगता है और कहता है कि ''हे माता ! तू मात्र नागदत्त मुनि की ही माता नहीं, बल्कि हमारी भी माता है। माता धन्य है तुम्हें जो तुमने ऐसे उत्तम मुनिराज को जन्म दिया'' – ऐसा कहकर डाकू सरदार लूटा हुआ धन और राजकन्या माता को सौंपकर पुनः क्षमा माँगता है।

डाकू भी मुनिराज नागदत्त के वीतरागी साम्यभाव की महिमा करते हैं कि अहो ! धन्य हैं वे नागदत्त मुनिराज और धन्य है वह मुनिदशा ! देखो तो सही ! अपनी माता के पूछने पर भी सहज सावधान नहीं करते कि आगे डाकू हैं। चैतन्य स्वरूप में झूलते वीतरागी निर्लेप मुनिराज के लिये तो माता हो या डाकू सब समान हैं। उनके सहज ही किसी के भी प्रति राग-द्वेष नहीं होते । ''अपनी माता-बहिन डाकुओं की ओर न जाये तो ठीक'' – ऐसा विकल्प तक भी जिनको नहीं होता, ऐसे समभावी सन्त मुनिवर धन्य हैं। इत्यादि प्रकार से महिमा करते-करते वह डाकू भी मुनिराज नागदत्त के समीप जाकर जैनेश्वरी दीक्षा देने हेतु निवेदन करता है। मुनिराज डाकू सरदार को पात्र जानकर जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान करते हैं और उनका नाम सूरदत्त मुनिराज

रखते हैं। सूरदत्त मुनिराज भी उग्र पुरुषार्थ द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट

करके घोर तप करके चार घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं और पश्चात् अघातिया कर्मों का भी नाश करके मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। मुनिराज नागदत्त भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके चार घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं और पश्चात् चार अघातिया कर्मों का भी नाश करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

अहो ! धन्य है ऐसे मुनिराज एवं उनकी मुनिदशा को, कि जिनका वीतरागी समभाव देखकर क्रूर परिणामी डाकू भी मुनि होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

– नागकुमार चरित्र से साभार

बैरी हो वह भी उपकार करने से मित्र बन जाता है, इस कारण जिसको दान-सम्मान आदि दिये जाते हैं, वह शत्रु भी अपना अत्यन्त प्रिय मित्र बन जाता है तथा पुत्र के भी इच्छित भोग रोकने से तथा अपमान तिरस्कार आदि करने से वह भी क्षणमात्र में अपना शत्रु हो जाता है। **अतः संसार में कोई किसी का मित्र अथवा शत्रु नहीं है** । कार्य अनुसार शत्रुपना और मित्रपना प्रकट होता है। **स्वजनपना, परजनपना, शत्रुपना, मित्रपना जीव का स्वभावतः किसी के साथ नहीं है। उपकार–अपकार की अपेक्षा से मित्रपना–शत्रुपना जानना। वस्तुतः कोई किसी का शत्रु–मित्र नहीं है। अतः किसी के प्रति राग–द्वेष करना उचित नहीं है।**

सच्चा वैराग्य

रथनूपुर का राजा इन्द्र महा शक्तिशाली था। फिर भी उसके ऊपर चढ़ाई करके रावण ने उसे बांध लिया, इस कारण इन्द्र के सामन्त लोकपाल अपने स्वामी के दु:ख से अत्यन्त दुखी हुए। तब इन्द्र के पिता सहस्रार, जो उदासीन श्रावक थे, इन्द्र को छुड़ाने के लिये लंका आये और रावण के पास गये। रावण ने सहस्रार को उदासीन श्रावक जानकर स्वयं सिंहासन से उतरकर उनका बहुत विनय किया और उन्हें सिंहासन दिया, स्वयं नीचे बैठा।

सहस्रार रावण को विवेकी जानकर कहने लगे कि हे दशानन् ! तुम जगजित हो, इससे तुमने इन्द्र को भी अर्थात् परमवीर शक्तिशाली इन्द्र तुल्य बल के धनी मेरे पुत्र को जीता है। तुम्हारा बाहुबल सबने देखा है। जो महान राजा होते हैं, वे गर्विष्ट लोगों का गर्व दूर करके फिर कृपा करते हैं; अत: अब इन्द्र को छोड़ दीजिए। उनके आस-पास खड़े चारों लोकपालों के मुख से भी यही शब्द निकले, मानो उन्होंने सहस्रार के द्वारा सिखाया हुआ ही बोला हो।

तब रावण ने सहस्रार से हाथ जोड़कर यही कहा कि – 'आप जैसा कहते हो वैसा ही होगा।' फिर उसने मजाक करते हुए चारों लोकपालों से कहा कि तुम नगर की सफाई करो। नगर को तृण, कंकड़ रहित करके कमल और पंचरंगी पुष्पों से सुगन्धित करते हुए सुन्दर सजाओ। इन्द्र से पृथ्वी पर सुगंधित जल का छिड़काव कराओ। रावण के ये वचन सुनकर चारों लोकपाल तो लज्जित होकर नीचे देखने लगे; परन्तु सहस्रार अमृतमयी वाणी में बोले कि हे वीर ! तुम जिसको जो आज्ञा करोगे, उसी अनुसार वे करेंगे, तुम्हारी आज्ञा सर्वोपरि है। यदि तुम्हारे जैसे महामानव पृथ्वी को शिक्षा नहीं देंगे तो और कौन देगा ?

यह सुनकर रावण अति प्रसन्न हुआ और बोला हे पूज्य ! आप हमारे पिता तुल्य हो और इन्द्र मेरा चौथा भाई है। उसे प्राप्त करके मैं सम्पूर्ण पृथ्वी को कटंक रहित करूँगा। उसका राज्य ज्यों का त्यों है और ये लोकपाल भी

ज्यों के त्यों रहेंगे और दोनों श्रेणी से अधिक राज्य की इच्छा हो तो वह भी ले लो। मेरे में और उसमें कोई अन्तर नहीं है। आप बड़े हो, गुरु हो; जैसे इन्द्र को शिक्षा देते हो वैसे ही मुझे भी दो। आपकी शिक्षा आनन्दकारी है। आप रथनूपुर में विराजो अथवा यहाँ विराजो, दोनों आपकी ही भूमियाँ हैं।

ऐसे प्रिय वचनों से इन्द्र के पिता सहस्रार का मन अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। वे कहने लगे कि हे भव्य ! तुम्हारे जैसे सज्जन पुरुषों की उत्पत्ति सभी लोगों को आनन्द देती है। हे चिरंजीवी ! तुम्हारी शूरवीरता का आभूषण यह उत्तम विनयभाव सम्पूर्ण पृथ्वी में प्रशंसा के योग्य है। तुम्हें देखने से हमारे नेत्र सफल हुए हैं। धन्य हैं तुम्हारे माता-पिता कि जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया। तुम्हारी कीर्ति कुन्दपुष्प के समान उज्ज्वल है। तुम समर्थ और क्षमादान के दाता तथा गर्व रहित ज्ञानी हो, गुणप्रिय जिनशासन के अधिकारी हो। तुमने मुझे यह कहा कि 'यह आपका घर है और जैसा इन्द्र आपका पुत्र है वैसा मैं हूँ' सो तुम्हारी यह बात प्रशंसा के योग्य है, तुम्हारे मुख से निकले ये वचन आदर योग्य हैं, तुम्हारे जैसा पुरुष इस संसार में विरल है।

परन्तु जन्मभूमि माता के समान होती है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। जन्मभूमि का वियोग चित्त को आकुल-व्याकुल करता है। तुम समस्त पृथ्वी के स्वामी हो, तो भी तुम्हें लंका ही प्रिय है। हमारे बंधुजन और समस्त प्रजाजन हमें देखने की अभिलाषा से हमारे आगमन का इन्तजार कर रहे हैं, इस कारण अब मैं रथनूपुर जाऊँगा; परन्तु हमारा चित्त सदा तुम्हारे पास रहेगा। हे दशानन् ! तुम चिरकाल तक पृथ्वी की रक्षा करो।

इस वार्तालाप के पूर्ण होते ही रावण ने राजा इन्द्र को बुलाया और सहस्रार के साथ भेज दिया।

रावण स्वयं सहस्रार को पहुँचाने थोड़ी दूर तक गया और अत्यन्त विनय पूर्वक विदा दी। सहस्रार इन्द्र को लेकर लोकपाल सहित विजयार्द्ध गिरि पर आये। सारा राज्य ज्यों का त्यों था। लोकपाल आकर अपने-अपने स्थानों पर रहे, परन्तु मानभंग से आकुलता को प्राप्त हुए।

जैसे-जैसे विजयार्द्ध के लोग इन्द्र और लोकपालों को देखते वैसे-वैसे वे शर्म से नीचे झुक जाते। इन्द्र को अब न तो रथनूपुर से प्रीति रही, न रानियों से प्रीति रही, न उपवनादि में प्रीति रही, न लोकपालों में प्रीति रही। कमलों के मकरंद से जिसका जल पीला हो रहा है ऐसे मनोहर सरोवरों में भी अब उसे प्रीति नहीं रही अर्थात् अब उसे किसी के भी प्रति प्रीति नहीं रही। अधिक क्या कहें ? अब तो उसे अपने शरीर में भी प्रीति नहीं रही। उसका चित्त लज्जायुक्त होने से उदास रहने लगा। उसे देखकर सभी उसको अनेक प्रकार से प्रसन्न करना चाहते और कथाओं के प्रसंग कहकर यह बात भुलाने का प्रयत्न करते; परन्तु वह भूल नहीं पाता। उसने सभी लीला-विलास छोड़ दिये। वह अपने राजमहल के मध्य पर्वत-शिखर के समान ऊँचे जिनमन्दिर के एक स्तम्भ के ऊपर रहता, उसका शरीर भी कृश होकर कान्तिहीन हो गया।

पण्डितों से मण्डित वह विचारता है कि धिक्कार है इस विद्याधर पद के ऐश्वर्य को, कि जो एक क्षणमात्र में विलय को प्राप्त हुआ। जैसे शरद ऋतु के बादल अत्यन्त ऊँचे होते हैं; परन्तु वे क्षणमात्र में विलय को प्राप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार जिन्होंने अनेक बार अद्भुत कार्य किये थे, ऐसे यह शस्त्र, हाथी, तुरंग, योद्धा आदि सब तृण समान हो गये अथवा यह कर्मों की विचित्रता है, कौन पुरुष इसे अन्यथा कर सकता है ? अत: जगत में कर्म प्रबल है। मैंने पूर्व में नाना प्रकार की भोग सामग्री देने वाले कर्म उपार्जित किये थे, वे अपना फल देकर खिर गये – इस कारण मेरी यह दशा हो रही है। मैं जन्म से लेकर शत्रुओं के शिर पर चरण रखकर जिया हूँ – ऐसा मैं इन्द्र समान बल का धनी अब मात्र इन्द्र नाम धारी बनकर रह गया। शत्रु का अनुचर होकर किस प्रकार राज्य लक्ष्मी भोगूँगा ? अत: अब संसार के इन्द्रियजनित सुख की अभिलाषा तजकर मोक्षपद प्राप्ति के कारणरूप मुनिव्रतों को अंगीकार करूँ। रावण शत्रु का वेश धारण करके मेरा महामित्र बना है, उसने मुझे प्रतिबोध दिया, अन्यथा मैं तो असार संसार के सुख में ही आसक्त था।

इस प्रकार इन्द्र विचार कर ही रहा था कि उसी समय निर्वाणसंगम नामक चारण मुनि विहार करते हुए आकाश मार्ग से जा रहे थे। चैत्यालय के कारण उनका आगे गमन नहीं हो सका, अत: उन्होंने नीचे उतरकर भगवान के प्रतिबिम्बों के दर्शन किये। मुनिराज चार ज्ञान धारी थे। अत: वे मुनिराज राजा इन्द्र के मन की बातों को जान गये और उन्होंने उसे पात्र जानकर इसप्रकार समाधान किया कि "हे इन्द्र ! जो रहट का एक घड़ा भरा होता है वह खाली होता है और जो खाली है वह भरता है; उसी प्रकार इस संसार की यात्रा क्षणभंगुर है, यह बदल जाये इसमें आश्यर्च नहीं है।"

मुनि के मुख से उपदेश सुनकर इन्द्र ने अपने पूर्वभव पूछे। तब अनेक गुणों से सुशोभित मुनिराज ने कहा– हे राजन् ! अनादिकाल का यह जीव चार गतियों में परिभ्रमण करता हुआ जो अनन्तभव यह धारण करता है, वे तो केवलज्ञान गम्य हैं; परन्तु मैं तुम्हारे कुछ भवों का कथन करता हूँ, जिसे सुनकर तुम्हें संसार की विचित्रता का स्वरूप ख्याल में आयेगा और बोध प्राप्त होगा।

✦ ✦ ✦

शिखापद नामक नगर में एक स्त्री अत्यन्त गरीब थी। उसका नाम कुलवंती था। उसकी आँखें धसी हुईं, नाम चपटी, शरीर में अनके व्याधियाँ ऐसी वह पापकर्म के उदय से लोगों की जूठन खाकर जीवित थी। उसके अंग कुरूप, वस्त्र मेले-फटे एवं बाल रूखे थे। वह जहाँ जाती लोग अनादर करते, उसे कहीं सुख नहीं मिलता। जीवन के अन्तकाल में उसे सुबुद्धि उत्पन्न हुई और उसने एक मुहुर्त का अनशन व्रत ले लिया। वह प्राण तजकर किंपुरुष देव की शीलधरा नाम की दासी हुई।

वहाँ से चयकर रत्ननगर में गौमुख नामक कणबी की धरणी नामक की स्त्री के गर्भ से सहस्रभाग नामक पुत्ररूप में उत्पन्न हुई। वहाँ उसने सम्यक्त्व पूर्वक श्रावक के व्रत अंगीकार किये और मरकर शुक्र नामक नौवे स्वर्ग में उत्तम देव का जन्म धारण किया। वहाँ से चयकर महाविदेहक्षेत्र के रत्नसंचय नगर में मणी नाम के मंत्री की गुणावली नाम की स्त्री से सामंतवर्द्धन नामक

पुत्ररूप में जन्म लिया। उसने पिता के साथ वैराग्य अंगीकार किया और अति घोर तप करते हुए अपना चित्त तत्त्वार्थों के चिन्तन में लगाया। निर्मल सम्यक्त्व पूर्वक कषाय रहित बाईस परिषहों को सहन करके शरीर का त्याग किया और नौवे ग्रैवेयक में गया। वहाँ बहुतकाल तक अहमिन्द्र के सुख भोगकर राजा सहस्रार विद्याधर की रानी हृदयसुन्दरी के गर्भ से उनके पुत्ररूप में तेरा यहाँ रथनूपुर में जन्म हुआ और पूर्व के अभ्यास से तेरा मन इन्द्र समान सुख में आसक्त हुआ और तू विद्याधरों का अधिपति राजा इन्द्र कहलाया।

अब तू यह सोच कर व्यर्थ खेद करता है कि ''मैं विद्या में अधिक था और शत्रुओं से पराजित हुआ। अरे, कोई बुद्धिहीन पुरुष कौदव बोकर चावलों की इच्छा करे वह निरर्थक है। यह प्राणी जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है। तूने पूर्व में भोग का साधन हो वैसा शुभ कर्म किया था वह नष्ट हुआ है। कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती – इस विषय में आश्चर्य कैसा ? तूने इस जन्म में अशुभ कर्म किये हैं, उसका यह अपमानरूप फल मिला है और रावण तो निमित्तमात्र है। तूने जो अज्ञानरूप चेष्टा की है, क्या तू वह नही जानता ? तू ऐश्वर्यमद के कारण भ्रष्ट हुआ है। बहुत काल बीत जाने के कारण तुझे याद नहीं है। मैं बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुन–

अरिंजयपुर में ब्रह्मवेग नामक राजा की वेगवती रानी की अहल्या नाम की पुत्री का स्वयंवर मण्डप रचा गया था। वहाँ दोनों श्रेणियों के विद्याधर अति-अभिलाषा रखकर गये थे और तू भी वहाँ अपनी विशाल सम्पदा सहित गया था। एक चन्द्रावर्त नाम के नगर का मालिक राजा आनन्दमाल भी वहाँ आया था। अहल्या ने सबको छोड़कर उसके गले में वरमाला डाली थी। वह आनन्दमाल अहल्या से विवाह करके इन्द्र-इन्द्रानी की तरह मनवांछित सुख भोगता था। जिस दिन से उसका विवाह अहल्या के साथ हुआ, उसी दिन से तुझे उसके प्रति ईर्ष्या बढ़ी और तूने उसे अपना शत्रु माना। कितने ही दिन वह घर में रहा। फिर उसको ऐसा विचार आया कि यह देह विनाशीक है, अत: अब मैं तप करूँगा, जिससे मेरे संसार भ्रमण का अन्त होगा। ये

इन्द्रियों के भोग महाठग हैं, इनमें सुख की आशा कैसे की जा सकती है?

इस प्रकार मन में विचार करके वह ज्ञानी अन्तरात्मा समस्त परिग्रह का त्याग करके दीक्षा धारण कर तपश्चरण करने लगा।

एक दिन वह हंसावली नदी के किनारे कायोत्सर्ग धारण करके बैठा था, वहाँ तूने उसे देखा। उसे देखते ही तेरी क्रोधाग्नि भड़क उठी और तुझ मूर्ख ने उसका उपहास किया कि अहो आनन्दमाल ! तू काम–भोग में अति आसक्त था, अब अहल्या के साथ रमण कौन करेगा ? वे मुनि तो विरक्त चित्त पहाड़ के समान निश्चल होकर बैठे थे। उनका मन तत्त्वार्थ चिंतन में अन्यन्त स्थिर था। इस प्रकार तूने परममुनि की अवज्ञा की। वे मुनिराज तो आत्म सुख में मग्न थे, उन्होंने तेरी बात को हृदय में प्रवेश नहीं होने दिया। उनके पास ही तेरे भाई कल्याण नाम का मुनि बैठे थे। उन्होंने तुझसे कहा कि तूने इन मुनिराज की अवज्ञा की है, इस कारण तेरी भी अवज्ञा होगी। तब सर्वश्री नाम की स्त्री, जो कि सम्यग्दृष्टि और साधु पूजक थी, उसने नमस्कार करके कल्याणस्वामी को शान्त किया।

यदि उसने उन्हें शान्त नहीं किया होता तो तू तत्काल साधु की क्रोधाग्नि से भस्म हो जाता। तीन लोक में तप के समान कोई बलवान नहीं है। जैसी शक्ति साधुओं की होती है वैसी इन्द्रादिकों की भी नहीं होती है। जो पुरुष साधुओं का अनादर करता है, वह भव-भव में अत्यन्त दुःख पाकर नरक-निगोद में ही पड़ता है। अतः इसभव और परभव में दुःख ही भोगता है, मुनियों की अवज्ञा के समान दूसरा पाप नहीं है । यह प्राणी मन, वचन और काया से जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। – ऐसा जानकर अब तुम बुद्धि को धर्म में लगाओ और अपनी आत्मा को संसार दुःखों से छुड़ाओ।

महामुनि के मुख से अपने पूर्वभव की कथा सुनकर इन्द्र आश्चर्य को प्राप्त हुआ। वह नमस्कार करके मुनिराज से कहने लगा– हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मैंने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। साधुओं के संग से जगत में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, अनन्त जन्मों में जो नहीं मिला, वह आत्मज्ञान भी उनके प्रसाद से मिलता है। अब समस्त कर्मों के क्षय का उपाय करूँगा। – ऐसा कहकर

उसने बारम्बार मुनिराज की वन्दना की। मुनिराज तो आकाश मार्ग से विहार कर गये और गृहस्थाश्रम से अत्यन्त विरक्त उस राजा इन्द्र ने संसार, शरीर एवं भोगों को असार जानकर, धर्म में निश्चल बुद्धि से अपनी अज्ञान चेष्टा की निन्दा करते हुए अपनी राज्यविभूति पुत्र को देकर अपने अनेक पुत्रों, राजाओं और लोकपालों सहित सर्व कर्मों की नाशक जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार करली।

सर्व परिग्रहों का त्याग करके, निर्मल चित्त वाले उसने पहले जैसे शरीर को भोगों में लगाया था, वैसा ही तप करने में लगाया – ऐसा तप अन्य से नहीं हो सकता। महापुरुषों की शक्ति बहुत होती है। वह जैसे भोगों में प्रवर्तते हैं, वैसे ही विशुद्धभाव में भी प्रवर्तते हैं। इस प्रकार राजा इन्द्र ने मुनि बनकर बहुत काल तक तप किया और अंत में शुक्लध्यान के प्रताप से कर्मों का क्षय करके निर्वाणपद प्राप्त कर अनन्तसुखी हो गये।

अन्त में गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि देखो ! जो महापुरुष होते हैं, उनका चरित्र आश्चर्यकारी होता है। वे प्रबल पराक्रम के धारक बहुत काल तक भोग भोगकर भी संसार में फसते नहीं हैं और अन्त में वैराग्य लेकर अविनाशी सुख भोगते हैं, वे समस्त परिग्रह का त्याग करके क्षणमात्र में ध्यान के बल से महान पापों का क्षय करते हैं, जैसे बहुत काल से ईंधन की राशि का संचय किया हो, वह क्षणमात्र में अग्नि के संयोग से भस्म हो जाती है। – ऐसा जानकर हे प्राणी ! आत्मकल्याण का प्रयत्न करो! अन्त:करण विशुद्ध करो ! मरण होने पर इस पर्याय का अन्त निश्चित है, अत: ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से अज्ञानरूप अंधकार को दूर करो।

– पद्मपुराण पर आधारित

नवनिधि, चौदह रत्न, घोड़े, मस्त उत्तम हाथी, चतुरंगिनी सेना इत्यादि सामग्री भी चक्रवर्ती को शरणरूप नहीं है। उसका अपार वैभव भी उसे मृत्यु से नहीं बचा सकता। जन्म-जरा-मरण-रोग और भय से अपनी आत्मा ही अपनी रक्षा करती है।

– कुन्दकुन्दाचार्य : बारह भावना

राजा से रंक और रंक से राजा
(गौतम गणधर के पूर्वभवों पर आधारित)

इस भरत क्षेत्र में अनेक नगरों से सुशोभित अवन्ति नामक देश में राजा महीचन्द राज्य करते थे। एक दिन नगरी के उपवन में अंगभूषण नामक वीतरागी मुनिराज पधारे। मुनिराज का आगमन जानकर राजा महीचन्द अपने रनवास और नगरजनों को साथ लेकर मुनिराज के दर्शन करने के लिये उपवन में गया। उपवन में मुनिराज के दर्शन, पूजन, वन्दन, स्तुति करके राजा ने मुनिराज से धर्मवृद्धिरूप आशीर्वाद प्राप्त किया। तथा धर्मोपदेश सुनने की भावना से उनके ही समीप बैठ गया। मुनिराज का धर्मोपदेश सुनने उपवन में अपार जन-समुदाय इकट्ठा हो गया, उसी सभा में एक क्षुद्र की तीन कुरूपा कन्यायें भी शीघ्रता से आकर बैठ गईं।

मुनिराज ने पुण्य, पाप और धर्म व उनके फल का विस्तार पूर्वक उपदेश दिया, जिसे सुनकर राजा महीचन्द बहुत ही प्रसन्न हुआ। यद्यपि वे क्षुद्र-कन्यायें दुष्टस्वंभावी, दीन, तीव्र दुःखों से दुःखी थीं, काली थीं, दया रहित थीं, माता-पिता, भाई-बन्धुओं से रहित थीं; तथापि जब उन क्षुद्र कन्याओं पर राजा की नजर पड़ी तो उनको देखते ही राजा के नेत्र प्रफुल्लित हो गये, मन में हुए आनन्द के भाव चहरे पर झलकने लगे। इस कारण राजा ने तुरन्त ही मुनिराज से पूछा कि इन क्षुद्र कन्याओं को देखकर मेरे हृदय में अत्यन्त प्रेम क्यों उत्पन्न हो रहा है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनिराज ने कहा कि इनके साथ तुम्हारा पूर्व भव में सम्बन्ध था, इसीकारण तुम्हें इनसे अनुराग हो रहा है।

राजा को पूर्व भव जानने की जिज्ञासा हुई, तब मुनिराज ने उनके पूर्व भव का वृतान्त इसप्रकार कहना आरम्भ किया।

''इस भरत क्षेत्र में काशी नामक महाविशाल देश है। जो तीर्थंकर परमदेव के पंचकल्याणकों सहित अनेक प्रकार की शोभा से सुशोभित है। इस काशी देश में बनारस नामक एक नगर है। उसमें एक विश्वलोचन नामक

राजा राज्य करता था। उस राजा के विशालाक्षी नामक रानी थी। वह इन्द्रानी, रतिदेवी आदि देवांगनाओं के समान सुन्दर थी। राजा विश्वलोचन को वह बहुत ही प्रिय थी। एक दिन रानी विशालाक्षी प्रसन्नता से अपनी चामरी और रंगिका नामक दो दासियों के साथ राजमहल के झरोखे में खड़ी थी। राजमार्ग में नाच, गान आदि से सुशोभित एक नाटक चल रहा था, जो समस्त प्रजाजनों के मन को मोहित कर रहा था। उस नाटक को देखते ही रानी विशालाक्षी का मन चंचल हो गया। वह अपने हृदय में विचार करने लगी कि इस राज्य सुख से मुझे क्या लाभ है? मैं तो एक अपराधी की तरह जैलखाने में बंधी पड़ी हूँ, संसार में वे ही स्त्रियाँ धन्य हैं जो अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ घूमती हैं, परन्तु मुझे मेरी इच्छानुसार घूमने-फिरने का सुख प्राप्त नहीं हुआ। अतः अब मैं इच्छानुसार घूमने-फिरने रूप संसार का फल शीघ्र और सदा के लिये चाहती हूँ। इस विषय में लज्जा मेरा क्या करेगी ? इसप्रकार रानी विचार करने लगी और छल-कपट में अत्यन्त चतुर ऐसी अपनी दोनों दासियों से कहा कि हे दासियो ! इच्छानुसार घूमने-फिरने के सुख से तो मनुष्य भव सफल होता है और वह काम-भोग को देने वाला है। अतः अपने को यहाँ से जल्दी निकलकर इच्छानुसार घूमना-फिरना चाहिये। उसके उत्तर में दासियाँ कहने लगी कि आपने यह बहुत उत्तम विचार किया है। संसार में मनुष्य जन्म का फल यही है।

तत्पश्चात् कामवासना से पीड़ित, अंधी और दुष्ट हृदय वाली, कुलाचार रहित, कुबुद्धि की धारक रानी अपने पाप कर्मोदय से दोनों दासियों के साथ घर से निकलने का उपाय करने लगी। झूठ बोलना, दुर्बुद्धि होना, कुटिल हृदय, छल-कपट करना और मूर्ख़ता – इन दुर्गुणों का स्त्रियों में सहज ही बाहुल्य होता है। अत: रात्रि होते ही रानी ने रुई भरकर एक स्त्री का पुतला बनाया और उसे वस्त्र व गहनों से सुसज्जित किया तथा पूरा-पूरा स्वयं के रूप जैसा बनाकर पलंग पर सुला दिया।

रानी ने द्वारपाल आदि सेवकों को भी वस्त्राभूषण-धन आदि देकर अपने वश में कर लिया। तत्पश्चात् रानी ने पूर्वकृत पापकर्मोदय से दोनों

दासियों को साथ लेकर किसी देवी की पूजा के बहाने मध्य रात्रि को राजमहल का परित्याग कर दिया तथा बाद में सुन्दर वस्त्राभूषण और राजसी चिन्हों को त्यागकर, भगवे वस्त्र पहिनकर योगिन का रूप धारण किया। महल में मिलने वाला भोजन तो छूट ही गया, अतः भीख माँगकर एवं वृक्षों के फलों को खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने लगीं।

इधर जब रात्रि के समय राजा विश्वलोचन रानी के महल में गया तब रानी को शृंगारयुक्त पलंग पर देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, परन्तु रानी द्वारा योग्य व्यवहार करता हुआ न देखकर विचार करने लगा कि आज रानी को क्या हुआ है ? इसके शरीर में कोई रोग हुआ है या कोई अन्य ही बात है ? चिन्ता से व्याकुल राजा ने पलंग पर बैठकर रानी का स्पर्श किया तब समझा कि यह तो रानी का पुतला है और रानी का किसी पापी ने हरण कर लिया है। ऐसा जानकर राजा बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। सेवकों द्वारा शीतोपचार से होश में आने पर राजा उस रानी के छल से अपरिचित उसी का गुण-गान करने लगा कि 'हे चन्द्रवदनी ! तू कहाँ गई ? तेरी रक्षा करने वाली दोनों दासियाँ कहाँ गईं ? इस महल में तो कोई आ भी नहीं सकता, फिर भी तेरा किस उपाय से हरण हो गया? या फिर कुलाचार से रहित दुष्ट तू स्वयं ही नष्ट हो गई? नीच मनुष्यों की संगति से सज्जन भी नष्ट हो जाते हैं। स्त्री जैसी अन्दर से होती है वैसी बाहर से नहीं दिखती है और जैसी बाहर से दिखती है वैसा कार्य नहीं करती है। स्त्रियों के चरित्र को भला कौन जान सकता है? अहा ! समस्त गुणों को धारण करने वाली रानी अपने दस वर्षीय पुत्र और पटरानी पद को छोड़कर कैसे चली गई ? इस प्रकार रानी के वियोग में बहुत समय तक दुःखी होकर राजा आर्त्त-रौद्र ध्यान पूर्वक मरण को प्राप्त हुआ। तब मंत्री आदि ने उसके पुत्र को राजगद्दी पर बिठाया।

वह राजा का जीव मरकर विशालकाय हाथी हुआ। उसके पुण्योदय से उस बन में एक अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे। मुनि ने हाथी को धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर हाथी ने श्रावक के व्रत धारण किये और अंत समय में

वह समाधिमरण पूर्वक मरकर पहले स्वर्ग में देव हुआ। स्वर्ग के सुख भोगकर, वहाँ से च्युत होकर तू महीचन्द नाम का उत्तम राजा हुआ। पूर्व भव के स्नेह से तुझे इनको देखकर अनुराग हुआ है और आगे चलकर तेरी मुक्ति होगी।

हे राजा महीचन्द ! अब तू इन तीनों स्त्रियों की कथा सुन। वह तीनों स्त्रियाँ अपनी इच्छानुसार बहुत प्रसन्नता से अनेक देशों में भ्रमण करने लगी। इन तीनों जोगिनों के साथ अन्य अनेक जोगिनें थीं जो भीख माँग-माँगकर पेट भरती थीं। ये जोगिनें हमेशा प्रमाद करने वाली मदिरा पीती और शरीर को पुष्ट रखने के लिये माँस भक्षण करती थीं तथा अनेक जीवों से भरे हुए महापाप को उत्पन्न करने वाले पाँच उदुम्बर फलों का सेवन करती थीं। तीनों स्त्रियाँ काम सेवन की इच्छा पूर्ति हेतु उत्तम अथवा नीच जो मिले उसी पुरुष का सेवन कर प्रसन्नता का अनुभव करती थीं तथा लोगों के सामने गीत गाती थीं और विचित्र बातें करती थीं, कहती थीं कि हमको जोग (योग) धारण किये हुए सौ वर्ष बीत चुके हैं।

एक दिन धर्माचार्य नाम के मुनिराज ईर्या समिति पूर्वक शुद्धि करने के लिए गमन कर रहे थे। ऐसे श्रेष्ठ मुनि को देखकर तीनों स्त्रियाँ लाल-लाल आँखें करके कहने लगीं कि अरे नग्न घूमने वाले ! हम उज्जैनी नगरी के दयालु राजा के पास धन लेने जाती थीं और किस पाप के उदय से तू हमारे सामने आया? तू दुराचारी है, क्या तूने अपनी लज्जा बेच दी है कि स्त्रियों के समने भी तू नग्न फिरता है। रे मूर्ख योगी ! तूने हमारा अपशकुन किया है इसलिये अब हमारे कार्य की सिद्धि नहीं होगी। अभी तो दिन है, परन्तु हम इस अपशकुन का फल तुझे रात्रि में देंगे। इसप्रकार इन स्त्रियों के दुष्ट वचन सुनकर भी मुनिराज ने क्रोध नहीं किया। जैसे पानी से भरी हुई पृथ्वी पर अग्नि कुछ कर नहीं सकती, उसी प्रकार क्षमाधारी पुरुष के लिये दुष्ट वचन कुछ नहीं कर सकते। जिस प्रकार पत्थर का मध्य भाग पानी से कभी गीला नहीं होता, उसी प्रकार योगीश्वरों का निर्मल हृदय क्रोधाग्नि से कभी नहीं जलता।

तत्पश्चात् वे तीनों स्त्रियाँ रात्रि के समय मुनिराज के समीप गईं और क्रोधित होकर अनेक प्रकार से उपद्रव करने लगीं। एक मुनिराज के समीप

आकर रोने लगी, दूसरी काम-वासना से पीड़ित हो मुनि के शरीर से लिपट गई और तीसरी ने धुआँ करके मुनिराज को बहुत कष्ट दिया। इसके पश्चात् कामज्वर से पीड़ित वे तीनों स्त्रियाँ अनेक प्रकार के कटाक्ष करती हुईं मुनिराज के सामने नग्न होकर नृत्य करने लगीं और पत्थर, लकड़ी, मुक्का, लात, हाथ आदि से उन्हें मारने लगीं तथा मुनिराज को बांध लिया, तथापि मुनिराज चलायमान नहीं हुए। सत्य ही है – क्या प्रलयकाल की वायु से महान मेरु पर्वत चलायमान होता है? उस समय मुनिराज अपने हृदय में बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करने लगे और उन्होंने अत्यन्त कष्ट प्रदायक स्त्रियों के उपसर्ग को कुछ भी नहीं गिना। संसाररूपी समुद्र में डूबे हुए प्राणियों को पार उतारने के लिये अनुप्रेक्षा ही नाव समान है।

प्रातःकाल होने पर इन उपद्रवों को व्यर्थ समझकर तथा मार्ग में आते-जाते लोगों के डर से तीनों स्त्रियाँ भाग गईं। उन्होंने मुनिराज पर जो घोर उपसर्ग किया वह अत्यन्त दुःखदायी था। इस पापकर्म के उदय से तीनों स्त्रियों को कोढ़ हो गया। सभी लोग उनकी निन्दा करने लगे। तीनों स्त्रियाँ कोढ़ के रोग से हमेशा महा दुःखी रहती थीं। आयु समाप्त होने पर रौद्रध्यान पूर्वक मरकर तीनों स्त्रियाँ पाँचवे नरक में उत्पन्न हुईं और असहनीय नरक के दुःखों को भोगने लगीं। नरक आयु पूर्ण होने पर तीनों ने एक समान ही कर्म बंध किया होने से तीनों जीव क्रमशः बिल्ली, सूअरी, कुत्ती और मुर्गी आदि योनियों में उत्पन्न हुईं, वहाँ भी वे बहुत जीवों की हिंसा करतीं, आपस में लड़ती-झगड़ती, घर-घर फिरतीं और मार खाती रहतीं।

आयु पूर्ण होने पर तीनों मुर्गियाँ बहुत ही दुःखी होकर मरीं और धर्मस्थानों से सुशोभित ऐसे अवन्ति देश के पास में नीच लोगों की बस्ती में इन कन्याओं के रूप में पैदा हुईं। इनके गर्भ में आते ही धनादि नष्ट हो गया, जन्म होते ही माता मर गई। तीनों में एक कानी, एक लंगड़ी और एक काली थी। वे मुनियों पर घोर उपसर्ग के पाप से हमेशा दुःखी रहा करती थीं। इनके शरीर, अंग-उपांग बेडोल थे। इनके शरीर की दुर्गन्ध से नगर में जाते ही सम्पूर्ण नगर दुर्गन्धयुक्त हो जाता था। तीनों कन्यायें भूख-प्यास से तीव्र पीड़ित थीं। अत्यन्त दुराचार करने में हमेशा तत्पर ऐसी ये तीनों कन्यायें

विदेश पर्यटन के लिये निकली थीं। रास्ते में सदा आपस में लड़ती-झगड़ती अनेक नगरों में भ्रमण करती, माँगती, खाती अनुक्रम से इस नगर में आई हैं। यद्यपि इनके शरीर अत्यन्त ही मलिन हैं, तथापि इन्होंने प्रसन्नचित्त होकर मुनि के पास आकर वंदन किया है। जिस प्रकार बादलों की गर्जना सुनकर मयूर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार मुनिराज के मुख से अपना भूतकाल सुनकर तीनों कन्यायें पश्चाताप पूर्वक शुभभाव सम्पन्न हुईं।

तत्पश्चात संसार दुःखों से भयभीत ये तीनों कन्यायें मुनिराज को भक्ति से नमस्कार व स्तुति करके प्रार्थना करने लगीं कि हे प्रभो ! हे स्वामिन् !! इस संसाररूप अपार समुद्र में डूबे हुए समस्त प्राणियों को पार लगाने के लिये आप जहाज के समान हैं। पूर्व भव में हमने जो घोर पाप किया था, कृपा करके उसके नाश का कोई उपाय बताइए?

मुनिराज उन कन्याओं के शुभ वचन सुनकर तथा उन्हें निकट भव्य समझकर मीठी वाणी से कहने लगे – हे पुत्रियो ! आत्मा तो सदाकाल सुख सम्पन्न ही है; परन्तु इस जीव ने अनादि काल से पर में सुख की कल्पना कर रखी है। अपने निज सुख की उसे आजतक उपलब्धि नीहं हुई। अत: तुम अब पर से सुख की चाह मिटाकर अपने सुख को ही उपलब्ध करने हेतु लब्धिविधान करो अर्थात् क्षयोपशम, विशुद्धि लब्धि पूर्वक देशना लब्धि द्वारा प्रायोग्य लब्धि में प्रवेश कर करणलब्धि द्वारा मिथ्यात्व का नाश कर सम्यक्त्व ग्रहण कर श्रावक के व्रत अंगीकार करो। यह व्रत कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने वाला है और संसाररूपी समुद्र से पार उतारने वाला है।

उन कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की मदद से तत्त्वज्ञान का अभ्यास कर भेदविज्ञान की अविच्छन्न धारा प्रवाहित कर मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय को मिटाने वाली लब्धि (करणलब्धि) प्राप्त की। इसप्रकार लब्धिविधान व्रत का उद्यापन कर, श्रावकों के व्रत धारण किये, शीलव्रत धारण किया और अन्त समय में समाधिमरण को धारण करके मृत्यु को प्राप्त हुईं। यहाँ से पाँचवें स्वर्ग में जाकर स्त्रीलिंग का छेद करके प्रभावशाली देव हुईं और स्वर्ग में उत्तम प्रकार के भोग भोगे।

इस भरत क्षेत्र में मगध देश में ब्राह्मण नाम का नगर है। उसमें एक शांडिल्य नाम का धनी गुणवान ब्राह्मण था। उसकी स्थंडिला नाम की रूपवती, सोभाग्यशाली स्त्री थी। स्वर्ग में जो बड़ा देव (रानी का जीव) था, वह आकर गौतम नाम का पुत्र हुआ और दूसरा देव भी स्थंडिला के ही गार्ग्य नाम का पुत्र हुआ और तीसरा देव उसी ब्राह्मण की दूसरी पत्नी के उदर से भार्गव नाम का पुत्र हुआ। जैसे कुंती के पुत्र पाण्डवों के बीच परस्पर प्रेम था, इसी प्रकार इन तीनों भाईयों में अत्यन्त प्रेम था। तीनों भाइयों ने ब्राह्मणों के समस्त क्रिया-काण्ड का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। तीनों में गौतम सबसे बड़ा था वह बौद्धमत के समस्त शास्त्रों का ज्ञाता था और ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों का उपाध्याय था।

उसी समय भगवान महावीर स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने आकर समवसरण की रचना की। भगवान सिंहासन पर विराजमान हुए, परन्तु छियासठ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी। यह देखकर सौधर्म इन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा कि समवसरण में गणधर देव की अनुपस्थिति के कारण दिव्यध्वनि नहीं खिर रही है। और इस समय समवसरण में ऐसा कोई भी जीव मौजूद नहीं है जो भगवान की दिव्यध्वनि को झेल सके। तब सौधर्म इन्द्र ने गणधर पद के योग्य जीव की खोज के लिए अपने अवधिज्ञान का घेरा बढ़ाया और अपने अवधिज्ञान द्वारा यह जाना कि गौतम ब्राह्मण ही गणधर बनने की योग्यता रखते हैं। अतः इन्द्र ने स्वयं ही एक अतिशय वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और लकड़ी के सहारे धीमें-धीमें चलते हुए गौतम ब्राह्मण के समीप आया और बोला – "संसार में अपना पेट भरने वाले तो बहुत हैं, परन्तु इस काव्य का अर्थ करने वाले इस पृथ्वी पर कोई विरल पुरुष होंगे? मेरे गुरु इस समय ध्यान में हैं, अतः अभी मुझे कुछ नहीं बता सकते। इसलिये मैं इस काव्य का अर्थ समझने के लिये आपके पास आया हूँ।"

उसके उत्तर में गौतम ने कहा – "आप अपने काव्य का बहुत अभिमान करते हो। यदि मैं अर्थ कर दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे?" वृद्ध वेशधारी इन्द्र

ने कहा– ''यदि तुम मेरे काव्य का अर्थ कर दोगे तो मैं सबके सामने तुम्हारा शिष्य बन जाऊँगा और यदि तुम अर्थ नहीं बता सके तो अपने समस्त अभिमानी शिष्यों और दोनों भाईयों के साथ आकर मेरे गुरु का शिष्य बनना होगा। गौतम ने यह बात स्वीकार कर ली।

इन्द्र ने गौतम से काव्यरूप में पूछा – 'द्रव्य कितने हैं? तत्त्व कितने हैं? अस्तिकाय कितने हैं? धर्म के कितने भेद हैं? श्रुतज्ञान के अंग कितने हैं? ऐसे गूढ़ प्रश्नों से भरे काव्य को सुनकर गौतम ब्राह्मण थोड़ा दुःखी हुआ और मन में विचार करने लगा कि इस काव्य का क्या अर्थ कहूँ? फिर गौतम ने विचारकर वृद्ध ब्राह्मण से कहा कि चलो, तुम्हारे गुरु से ही बात करते हैं। इस प्रकार कहकर गौतम अपने पाँच सौ शिष्यों सहित उस वृद्ध ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र के साथ चलने लगे। मार्ग में गौतम ने विचार किया कि जब मैं इस वृद्ध के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका, तब इसके गुरु तो महान् विद्वान होंगे, उनको किसप्रकार उत्तर दूँगा ?

कुछ ही समय में गौतम ब्राह्मण अपने 500 शिष्यों के साथ भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में आ पहुँचे। इन्द्र की खुशी का पार नहीं था, इन्द्र अपने अन्दर ही अन्दर आनन्दित हो रहा था कि तभी जिसने अपनी शोभा द्वारा तीनों लोकों में आश्चर्य उत्पन्न किया है – ऐसे मानस्तम्भ को

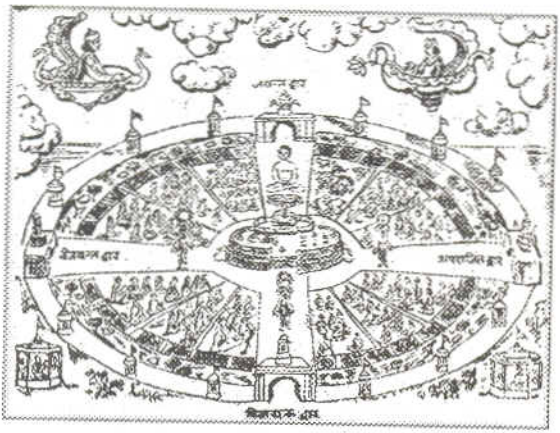

देखकर गौतम ब्राह्मण ने अपना सब अभिमान त्याग दिया। उन्होंने मन में विचार किया कि जिस गुरु की इस पृथ्वी पर आश्चर्य उत्पन्न करने वाली इतनी विभूति है, क्या वे मुझसे पराजित हो सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। तत्पश्चात् आगे जाकर वीर प्रभु के दर्शन करके गौतम ब्राह्मण ने अनेक प्रकार

से प्रभु की स्तुति की तथा पाँच सौ सदस्यों और दोनों भाईयों के साथ जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार की। वीरनाथ भगवान के समवसरण में चार ज्ञान से सुशोभित ऐसे इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति, वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए और वीरनाथ की दिव्यध्वनि खिरने लगी।

तपश्चरण करते-करते एक दिन मुनिराज गौतम स्वामी को निश्चल ध्यान अवस्था में कार्तिक कृष्ण अमावस्या के सायंकाल चार घातिया कर्मों के क्षय पूर्वक केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। तब उनकी दिव्यध्वनि के माध्यम से भव्यजीवों को मुक्तिमार्ग का पुन: लाभ मिलने लगा, क्योंकि आज ही के दिन वीर प्रभु महावीर स्वामी को निर्वाण की प्राप्ति हुई थी। कुछ काल पश्चात् गौतम स्वामी के चार अघातिया कर्मों का क्षय होने पर उन्हें अनन्त अव्याबाध सुख स्वरूप सिद्ध दशा की प्राप्ति हुई।

अहो ! गौतम स्वामी का जीव पहले विश्वलोचन महाराज की पटरानी होकर दुराचारी, विषय लंपटी, मांसभक्षी, मुनिनिंदक, मुनिहिंसक, घोर रौद्रध्यानी, नरकगामी हुआ और नरक से निकलकर, बिल्ली, सूअरी, कुत्ती, मुर्गी और कानी, लंगड़ी, कुबड़ी क्षुद्र कन्या के रूप में जन्मा और मुनिराज के दर्शन और उपदेश से सम्यक्त्वपूर्वक व्रतादि धारण कर समाधिमरण पूर्वक स्त्रीलिंग का छेद करके पाँचवें स्वर्ग में उत्तम देव हुआ और वहाँ से आकर ब्राह्मण कुल में पैदा होकर वेद वेदान्त में पारंगत हुआ और इन्द्र के द्वारा समवसरण में गया और मानस्तम्भ को देखकर मान गलित हुआ तथा दीक्षा अंगीकार की और चार ज्ञान प्रकट करके अन्तर्मुहूर्त्त में बारह अंग चौदह पूर्व की रचना करने वाले गणधर पद को प्राप्त कर अरहंत-सिद्ध पद प्राप्त किया।

हे भव्यजीवो ! इसप्रकार गौतम गणधर के अशुभ-शुभ और शुद्ध परिणाम और उसका फल कहा जो भव्यजीव आत्मा की शुद्धता को जानते हैं और उसका विश्वास करते हैं, आनन्द की अनुभूति में लीन रहते हैं, वे जीव संसार भ्रमण से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

साभार – गौतम स्वामी चरित्र पर आधारित